पुस्तक :—

पावस-प्रवचन—(प्रथम पुष्प)

प्रकाशक :
प्रवचन प्रकाशन समिति
ज्ञान भवन, मोदी रास्ता,
जयपुर—३

मूल्य : साधारण : २.५०
पक्की जिल्द प्लास्टिक कवर : ३.५०

श्रद्धा के दो शब्द

मानव जीवन के विकास सम्बन्धी इतिहास पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि मानव निरन्तर व्यक्ति एव समूह के जीवन की विषमताओ से सघर्ष करता आया है, एव समता की साधना मे निरत रहा है। इस सघर्ष को अब तक जितनी सफलता मिली है इसके प्रकाश मे कई व्यक्तित्त्व भी आदर्श एव समादरणीय बनते रहे है। विषमताओं से सघर्ष का उद्देश्य रहा है अधिकाधिक सम-वातावरण एव सम-प्रगति मार्ग का निर्माण। विषमता से सन्ताप जन्म लेता है और यही सन्ताप आर्तध्यान एव रौद्रध्यान की मलिन धाराओं मे आत्मा को ढकेलता हुआ उसे अधोगामी बनाता है। इसलिए समता की ओर अग्रसर होने की चेष्टा जीवन को 'कु' से 'सु' की ओर गतिशील बनाने की चेष्टा कहलायेगी।

समता मानव जीवन की अमृतमयी भावना है, क्योकि यही भावना जब कार्य एव आचरण के रूप मे उभरती है तो व्यक्ति के जीवन मे उदात्तता, सहनशीलता एव सत्प्रेरणा जागृत होती है। व्यक्ति की ऐसी जीवनधारा जब सम्यक्त्व की श्रेष्ठता की ओर उन्मुख होती है तो वह निश्चय ही सारे समाज की विचार एव आचार की धाराओ को भी प्रभावित किए बिना नही रहती। पूज्य आचार्य श्री नानालाल जी म सा के प्रस्तुत सकलन मे आवद्ध प्रवचन इसी प्रकाशमयी दिशा की ओर मानव जीवन को अनुप्रेरित करते है।

एक साधक और आचार्य श्री जैसे प्रबुद्ध एव कर्मठ साधक जब अपने ज्ञानानुभव के आधार पर प्रवचन-प्रवाह से जो मार्ग दर्शन देते हैं, वह अतर-भाव की दृष्टि से एक उन्नायक वैशिष्ट्य लिए हुए होता है। उसे हृदयगम करना और उसमे अपने आचरण को ढाल देना एक सच्चे भक्त का काम होता है। समता-दर्शन पर आधारित ये प्रवचन ससार एवं उसमे साधारण रूप से चल रहे जीवन की कुटिल विषमताओं को गहरी दृष्टि से समझाकर उन्हें दूर करते हुए समतामय जीवन निर्माण की एक नई दिशा देते हैं। पाठक यदि इन सकलन को आत्म-जागृति के साथ एव अनुभूतिपूर्वक पढ़ेंगे

अनुक्रमणिका

चारित्र चूडामणि जैनाचार्य

श्री १००८ नानालालजी महाराज साहब

के

जयपुर चातुर्मास

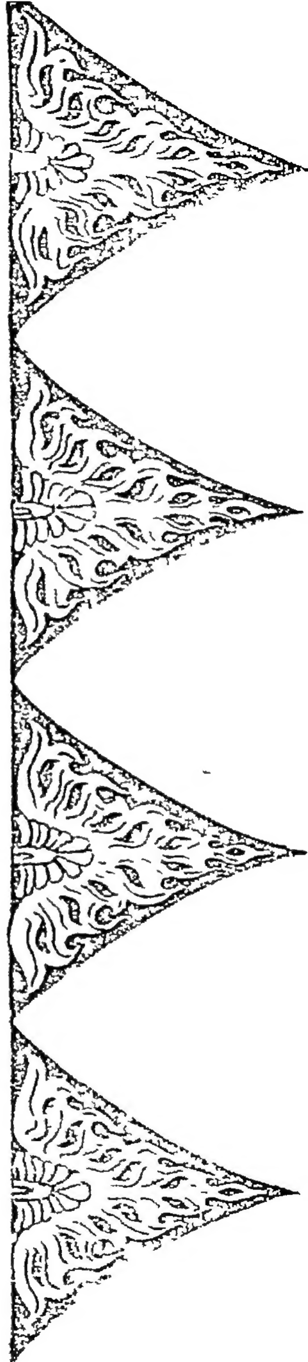
के

प्रेरक-पावस प्रवचन

हम सबको आत्म-जागृति मे

सहायक हो





श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

तो अवश्य ही उन्हें अपने समग्र जीवन को उत्कृष्ट, भावना के प्रवाह में परिवर्तित करने की अनूठी प्रेरणा प्राप्त होगी।

वचन प्रवचन तभी बनते हैं जब वे प्रबुद्ध जनों की शास्त्र सम्मत विचारणा से उभर कर उनकी अपनी मौलिक निष्ठा को छूते हुए निकलते हैं। यही कारण है कि प्रवचन भावनाशील श्रोता अथवा पाठक के हृदय को सीधे तौर पर स्पंदित करते हैं। इसके साथ ही यदि उसकी भावना ने प्रवचन के प्रवाह में समग्र रूप से अवगाहन किया तो वह श्रोता या पाठक कर्मठ बनकर स्वयं एवं समूह दोनों के जीवन में आदर्श उत्थान की प्रेरणा फूंकता है। प्रस्तुत संकलन के प्रवचन उत्थान की इसी दिशा को प्रकाशित करते हैं।

उपदेष्टा जब उपदेश देते हैं तो जिस भाव, भाषा एवं शैली का प्रयोग करते हैं—उसका अभिप्राय यही होता है कि वे श्रोता के हृदय को स्पन्दित करें। उपदेष्टा के प्रत्यक्ष दर्शन एवं श्रवण का जो सीधा सुप्रभाव होता है उसे इस प्रकार की सम्पादित लिपिबद्धता में बनाए रखना सरल नहीं होता, फिर भी प्रयास उसकी सरसता मौलिकता के निर्वाह की तरफ ही होना चाहिए। इस संकलन को व्यवस्थित रूप देने में श्री शान्तिमुनि जी ने कठिन श्रम किया है वह इस दृष्टि से सार्थक रहा है तथा यह संकलन पाठकों के लिए सुबोध, रुचिकर एवं प्रेरणादायक बन पड़ा है।

मुझे विश्वास है कि समतादर्शन की गहराइयों को समझने एवं उसकी आदर्श अनुभूति को क्रियाशील दृष्टि से जागृत करने में इस प्रकाशन से पाठक सानन्द लाभान्वित होंगे।

वह विभिन्न प्रकार की खोजो मे लगा हुआ है। वह चाहता यही है, कि इस मानव जीवन से परम शान्ति का स्वरूप, परम पवित्र रूप, वास्तविक सुख का स्थान उपलब्ध हो। इस आकाक्षा से व्यक्ति अपना रास्ता स्वत बनाता जाता है। अपने मन की कल्पना के अनुसार वह खोज मे लगता है। जब उसे ज्ञात होता है कि अमुक स्थल पर कुछ उसे उपलब्धि होने वाली है तो वहाँ जाने मे भी वह सकोच नही करता है चाहे वह समुद्र की गहराई मे हो, चाहे वह पहाडो की विकट ऊँचाई मे हो, चाहे भयावना जगल हो, लेकिन मानव उस उपलब्धि के लिए अपनी सारी चिंताएँ छोडकर आगे बढता ही जाता है।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। विज्ञान प्रगति कर रहा है किन्तु यह प्रगति अधूरी है क्योकि इस वैज्ञानिक स्थिति के साथ मे, मानव का मस्तिष्क विज्ञान ही को सब कुछ समझकर चल रहा है। विज्ञान के विषय मे यदि विस्तृत व्याख्या की जाय तो किसी के मतभेद का प्रश्न ही नही आता। विज्ञान के अन्दर सब तत्वो का समावेश है, विज्ञान के अन्दर सब का समन्वय है। यदि विज्ञान के अर्थ को सकुचित किया जाय और सिर्फ भौतिक तत्वो के विकास को ही विज्ञान कहा जाय तो वह विवाद का विषय बन जाता है क्योकि विज्ञान भौतिक तत्वो का भी होता है और आध्यात्मिक जीवन के साथ भी उसका गहरा सम्बन्ध है। एक दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन से ही विज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। लेकिन मानव का मस्तिष्क, अन्तर की उस आध्यात्मिक शक्ति को लक्ष्य बनाने मे अभी तक पूरा कामयाब नही बन रहा है। यही कारण है कि वह बाहरी पदार्थों मे सुख-शान्ति को खोज रहा है। इस प्रकार विज्ञान की अनेको उपलब्धियाँ होने पर भी मानव को अभी तक सन्तुष्टि नही मिल रही है, शान्ति और समता के दर्शन पूर्ण रूप से नही हो रहे हैं। मानव तथाकथित उपलब्धि से सन्तुष्ट है, लेकिन वस्तुत यह स्थिति दिन-प्रति दिन

की समस्त व्यवस्था हमारी अपनी है। जिसकी भूलो को स्वीकार करना भी हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

पावन प्रवचन माला को व्यवस्थित रूप देने में आचार्य श्री के सुशिष्य श्री शान्ति मुनि जी महाराज के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता, आपने इन प्रवचनों का अवलोकन करके हमारे इस कार्य को सुगम बनाया है इसके लिये समिति उनकी कृतज्ञ है। इसके अतिरिक्त वे प्रमुख रूप से सर्व श्री ज्ञानचन्द जी बैद, नरेन्द्र जी भाणावत, चैनसिंह जी बरला, प्रेमराजजी बोगावत, श्रीचन्द जी सुराणा, 'सरस' एव श्री सुगनचन्द जी तातेड चुन्नीलाल जी ललवानी आदि महानुभावो ने अपना जो भावनापूर्ण सहयोग दिया है, तथा श्रीविष्णु प्रिंटिंग प्रेस के मालिक श्री रामनारायण जी मेडतवाल ने बड़ी तत्परता के साथ सुन्दर मुद्रण कर समय पर कार्य सम्पन्न किया। एतदर्थ हम उनके प्रति भी अपना आभार प्रदर्शित करते हैं।

यदि समग्र समाज ने इन प्रकाशनों को पसन्द किया तथा विज्ञ पाठकों ने इनको पढ़कर अपना कर्त्तव्य बोध लिया तो हम अपने इस प्रयास को सार्थक समझेंगे।

प्रस्तुत प्रवचन की शृंखला मे आगे भी इस चातुर्मास मे आचार्य श्री द्वारा दिये गये समस्त प्रवचनों का पावस प्रवचन के नाम से विभिन्न संकलन प्रकाशित करने की प्रवचन प्रकाशन समिति की योजना है। इस रूप में जयपुर चातुर्मास की पवित्र स्मृति तो रहेगी ही किन्तु यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि भी होगी। आशा है कि सभी सहृदय सज्जनों का सहयोग मिलता रहेगा।

विनीत

पारसमल [illegible]

संयोजक एवं प्रबन्ध सम्पादक

प्रवचन प्रकाशन समिति

जयपुर

[illegible]

[illegible]

बना। चातुर्मास की दृष्टि से मैं यहा आ भी गया हू लेकिन अब जयपुर सघ को क्या करना है ? राजधानी की जनता को अपने जीवन मे वास्तविक रूप से कुछ परिवर्तन लाना है ? या उन्ही कुरीति रिवाजो के साथ अपने जीवन की इतिश्री करनी है। जो बाते इतने दिनो से चलती आ रही है, प्रत्येक व्यक्ति के साथ जो कुछ रूढिया लगी हुई हैं जिनमे वह अपने आपको आवद्ध पाता है, वह अपने आपको खोलने की कोशिश नही कर पा रहा है, अपने आपको व्यापक बनाने के लिए ध्यान नही दे रहा है। अब भी उसी भावना के साथ उन्ही रूढियो मे बँधे रहना है या अपनी आत्मा की भावना को साथ लेकर एकत्व भावना के साथ आगे बढना है ? यह सारा चितन जयपुर की जनता को करना है। जयपुर की जनता को ही नही अपितु सपूर्ण मानव समाज को इस विषय मे गहरा चिन्तन करना है। मैं माध्यम बन रहा हू। अपनी शक्ति के अनुसार कुछ बातें बतला रहा हूँ। लेकिन मैं जो बतलाता हूँ वही आप ग्रहण कर लें उसी को आप मान लें यह मेरा आग्रह नही है। मैं जो कुछ बातें कहता हू उन बातो को आप समझने की कोशिश करें। यदि आपको सत्य, तथ्यात्मक लगे, आपको सही चीज मालूम हो, यदि आपके जीवन के लिए हितावह हो, तो ग्रहण करें। मै किसी के ऊपर थोपने की स्थिति मे नही हू। हा, यदि किन्ही को मेरे विचारो को समझने मे भ्राति हो जाय तो उस भ्रांति को निकालने के लिए हर व्यक्ति के लिए दरवाजा खुला है। वे दिल खोल कर पूछ सकते हैं कि ये विचार आपने किस रूप मे कहे है ? इनका क्या तात्पर्य है ? इसके लिए मैं सदैव तत्पर हू। लेकिन आगे जिस स्थिति से आप लोगो को, एक प्रकाश प्राप्त करना है और नितान्त समतापूर्ण स्थिति के साथ यदि कुछ कार्य प्रारम्भ करना है तो आज जो समाजवाद की पहल राजनैतिक क्षेत्र मे चल रहो है उसमे जिन-जिन बातो की कमी है, उन कमियो पर

तैयार कर समरूप बना देने का प्रयास किया गया तो जयपुर चातुर्मास का यह प्रकाश दूर-दूर तक प्रकाश फेंकेगा। हवाई जहाज आकाश मे उडता है लेकिन कहाँ पर बड़ा स्टेशन है, इसका यात्री को पता कैसे लगता है ¹ यह तो आप जानते है। कुछ प्रकाश की लाइट पडती है तो आप देख लेते है कि बडा स्टेशन आ गया। यह राजधानी का वडा स्टेशन है। इस स्टेशन की तरफ राजस्थान का ही ध्यान नही है, मैं सोचता हू कि दूर-दूर के क्षेत्रो का ध्यान लगा हुआ है, और इसकी चमचमाती हुई रोशनी देखने के लिए कई तैयार हो रहे है। अगर राजधानी के अन्दर कोई ऐसा आदर्श और पवित्र कार्य जैन समाज को आह्लादित करने वाला हो और पवित्र समता सिद्धान्त का धरातल मानव मात्र के विकास का कारण वनता हो तो उस प्रकाश को लेने के लिए सब तैयार बैठे हुए हैं। यहाँ की सुगन्ध दूर दूर तक फैल सके यह उत्तरदायित्व जयपुर की जनता पर है। अत· जयपुर की जनता मे जो पूर्वग्रहीत आग्रह की कोई भावना हो जिससे जाति, व्यक्ति, पार्टी के घेरे मे पडे हुए हो, जिससे भाई-भाई के साथ मे विकट परिस्थिति पैदा हो गई हो तो उन विपमताओ को दूर कर सारी स्थितियो को समाहित करके एक धरातल की स्थिति के साथ आदर्श उपस्थित करना है। इस चातुर्मास मे जयपुर की जनता को कृषक के रूप मे अपने दिल और दिमाग को साफ करते हुए एक ऐसी खेती पैदा करनी है, जिससे अनेको को तृप्ति मिल सके, उस तृप्ति के लिए आप सवको तैयार होना है, और उसकी तैयारी करने के लिए अभी से प्रवृत्ति प्रारम्भ कर देना है।

आप अपने जीवन की खेती तैयार करने के लिए, ककर-पत्थर एक तरफ करने के लिए, कचरा साफ करने के लिए एकत्व भावना से आगे बढेगे। एकत्व भावना जव मन और जीवन मे जग जायेगी तव 'तुझ मे मुझ मे भेद न पाऊँ, इस स्थिति पर पहुच जाए गे।

अर्थात् आत्मिक शक्ति का सर्वाङ्गीण विकास जिसमें हो चुका हो, जाति गोत्र, व्यक्ति, पार्टी से सर्वथा भिन्न हो, नमस्कारक हो और संसार में प्राणियों के लिए समभाव का चरम स्वरूप हो। ऐसे आदर्श को सामने रखकर यदि मानव अपनी वृत्तियों को मोड़ दे दे तो आज जो संसार की विषम दशा दृष्टिगत हो रही है, वह सारी की सारी समाप्त हो जाय। मानव का मस्तिष्क जब नहीं समझता है तो—मस्तिष्क में अनेक प्रकार की विषम वृत्तियां घर किये रहती हैं, जब मस्तिष्क विषमता की भावना को लेकर चलता है तो भावना के अनुसार उस मानव की वृत्तियां भी विकृत बनती हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो मानव का मस्तिष्क विचारों का एक सुन्दर केन्द्र है, उस केन्द्र में यदि समता भाव के साथ वास्तविक तत्त्व प्रविष्ट हो जाय, विचारों का परिमार्जन होकर शुद्ध वृत्तियों का प्रादुर्भाव हो तो मस्तिष्क सुधर जाय, तात्पर्य यह है कि विचारों की शुद्धि ही मस्तिष्क की शुद्धि है और विचारों की शुद्धि से आचार पवित्र बनता है। उस शान्ति की वाणी की धारा भी पवित्र गंगा

असंखय जीविय मा पमायए

—उत्तराध्ययन ४।१

जीवन वडा असस्कृत है, टूटने के बाद पुन सध नही सकता, अत प्रमाद मत करो !

---

२ | संस्कारित जीवन

सुमति जिनेसर साहिवा जी
मेघरथ नृपनो नन्द !
सुमगला माता तणो जी !
तनय सदा सुखकन्द !
प्रभु त्रिभुवन तिलोजी !
सुमति सुमति दातार
महा महिमा निलोजी !
प्रणमूं वार हजार
प्रभु त्रिभुवन तिलोजी !

प्रभु सुमतिनाथ भगवान् के चरणो मे प्रार्थना की कडियो का उच्चारण किया है। प्रभु के अनेक नाम हैं। अनेक नामो से प्रभु

उसके जीवन को विषमतर बनाती चली जा रही है। वह चाहे भू-मण्डल से उठ कर गगनमण्डल में उड़ने के लिए, चाहे आकाश के अन्दर चमचमाते हुए सितारों को पकड़ने के लिए दौड़े, चाहे तथाकथित चांद आदि ग्रहों पर पहुंच जाय, लेकिन वहां पर भी वह वास्तविक शान्ति का स्वरूप, परमपवित्र रूप उपलब्ध होने वाला नहीं है। एक दृष्टि से देखा जाय तो यह खोज एकांगी बन रही है, इस एकांगी खोज को मोड़देकर सर्वांगीण खोज के साथ अगर जोड़ा जाय तो मानव-जीवन की तमाम समस्याएँ एक समता के धरातल पर सुलझ जाती हैं।

अभी जिन सिद्ध परमात्मा की प्रार्थना की गई है उस प्रार्थना में अनुसंधान का संकेत है। आज भौतिक अनुसंधान तीव्र गति से बढ़ रहा है किन्तु आध्यात्मिक अनुसंधान के अभाव में वह निर्जीव है, उसमें वह जौहर नहीं है जो आज के मानव जीवन के लिये नितान्त आवश्यक है अतः हमें आध्यात्मिक अनुसन्धान की ओर जीवन को मोड़ देना है। इसीलिए कविता में संकेत दिया गया है—

'तुझ में मुझ में भेद न पाऊं ऐसा हो सम्मान।
अजर अमर अविनाशी निरंजन अर्थात् सिद्ध भगवान॥"

यह तो, कविता का संकेत निमित्त मात्र है, लेकिन यह संकेत [illegible] बुद्धि की, [illegible] की जिज्ञासा [illegible] की, [illegible] आदि की आध्यात्मिक दृष्टि की [illegible] आध्यात्मिक अनुसन्धान के साथ [illegible] तो [illegible] बन जाता है। [illegible] दिया गया है। [illegible] का अनुसंधान [illegible] मुझ में भेद न पाऊं [illegible] परमात्मा के [illegible] और [illegible]

रहा है, उसमे वीतराग धर्म की वाणी का श्रवण हुआ तो वह सारा का सारा अमृतमय हो जायेगा। उसे अमृतमय बनाने के लिए हम अपने जीवन को टटोले। भगवान ने निर्देश दिया है, कि हे मानव! अपने जीवन को देख यह जीवन सस्कार हीन वन रहा है—असखयं जीविय मा पमायए" यह भगवान महावीर की उद्घोषणा प्रत्येक मानव के लिए है, और उसमे कहा गया है कि हे मानव! तुम्हारे जीवन के अन्दर सुमति के सस्कार नही हैं, तुम्हारा जीवन असस्कारित है, असस्कारित जीवन मे किसी तत्व को डाल दोगे तो उसका सस्कार नहीं हो पायेगा, उसका दुरुपयोग होगा। अपरिपक्व घड़े मे यदि अमृत डाल दोगे तो घडा भी चला जायेगा और अमृत भी। आपको अगर सस्कारित जीवन वनाना है तो सुमति को जागृत कीजिये, सुमति के विना संस्कारित जीवन नही वन सकता है। कुमति का जीवन असस्कारित जीवन है, अज्ञान का जीवन है। आप देख रहे हैं, एक वच्चे के सामने वहुमूल्य रत्न रख दीजिये। आप अपनी अगूठी का तीन लाख या पाच लाख का हीरा रख दीजिये। वह वच्चा उस हीरे की कीमत क्या करेगा? वह वच्चा उस हीरे को समझेगा? वह वच्चा उस हीरे को यत्न से रखने का प्रयत्न करेगा? नही! वह तो उसे उठाकर फेंक देगा। वच्चे के जीवन मे हीरे की पहचान का सस्कार नही है इसलिए वह वच्चा उस ज्ञान के अभाव मे, प्रारंभिक स्थिति मे असस्कारित होने के कारण हीरे के विषय में कुछ नही जान पा रहा है।

आप देखते हैं मनुष्यो की आकृति वाले प्राणी, हूवहू मनुष्यो की चेष्टाओ का अनुसरण करने वाले प्राणी। उनके अन्दर मनुष्यों सरीखे सस्कार पूर्ण रूप से नही पाये जाते। आपने जयपुर मे भी कभी-कभी उनका अवलोकन किया होगा—जो वन्दर जाति कहलाती है। जिनके इधर-उधर आपको दर्शन होते है। मन्दिरों मे भी वहुत ये उपद्रव इनका वहुत वोलवाला है। वहा स्था

इसी रूप में देखा जाय। उसके वास्तविक रूप को विकृत न करके वस्तुतत्त्व का निर्णय किया जाय तो समता सिद्धान्त दर्शन का दार्शनिक रूप हमारे सामने झलकने लगेगा। किन्तु हम समता सिद्धान्त के दार्शनिक रूप में ही न उलझ जाएँ उसे जीवन के कर्तव्य क्षेत्र में परिलक्षित करें ताकि समता सिद्धान्त के अनुरूप समता जीवन दर्शन का निर्माण हो। और इस प्रकार जब समता जीवन दर्शन में छोटी-छोटी बातों को ठीक तरह से समाहित करके उनको समता सिद्धान्त के साथ असली रूप देंगे, तो समता जीवन दर्शन के धरातल पर इस आध्यात्मिक दर्शन की उपलब्धि होगी। जिसे हम आत्मदर्शन की संज्ञा देते हैं। आत्मदर्शन की प्राप्ति के साथ जब आध्यात्मिक उल्लास और आन्तरिक निर्विकारदशा जागृत होगी तो जीवन समता परमात्म-दर्शन के रूप में परिवर्तित हो जाएगा। वही समता की पराकाष्ठा होगी, वही समता का चरम स्वरूप होगा और वही आत्मा का चरम साध्य परमात्म पद होगा। अर्थात् आत्मा स्वयं परमात्मा के रूप में परिवर्तित होगा। इसीलिए कहा गया है कि आत्मा स्वयं परमात्मा बन जाती है। आचार्यों का कथन भी है अप्पा सो परमप्पा — जो आत्मा है, वही परमात्मा है, लेकिन कब? जब सारी विकृतियाँ दूर हो जायेंगी, सर्वत्र परम पवित्र समता का साम्राज्य हो जायेगा।

[illegible] परम, सर्वोपरि समता रूप में पहुँच जाती है, तब वह निर्विकार [illegible] हो जाती है, वही परमात्मा के स्वरूप [illegible] दर्शन का अनुसंधान नहीं करता है, जिसका [illegible] विस्तार से [illegible] किया गया है।

[illegible] समता [illegible] की [illegible] के रूप में प्रसिद्ध है [illegible] हुआ [illegible]

नही। मिट्टी का ढेला उठाने के लिए कहेगे तो बड़ी नाराज हो जायेंगी कि क्या हमको मजदूरनी समझा है जो हमसे मिट्टी का का ढेला उठवा रहे हैं। लेकिन आप सोचिये उस मिट्टी के ढेले को सिर पर उठाने से अपना अपमान समझती हैं और उसी मिट्टी को वे घडे के रूप मे सिर पर उठाकर लेकर आ रही हैं। क्या अन्तर पड़ा ? मिट्टी वही, लेकिन उस मिट्टी मे और उस मिट्टी मे रात और दिन का अन्तर पड़ गया। वह मिट्टी असस्कारित मिट्टी थी जो ढेले के रूप मे पडी थी, जिसके ऊपर कोई भी व्यक्ति टट्टी पेशाब कर सकता है, उसको कोई भी ठोकर मार सकता है, कुदाली से खोद सकता है लेकिन उसी मिट्टी को कुम्भकार ने उठाकर जब घडा बनाया, उस मिट्टी का उसने सस्कार करना चालू किया, यह सस्कार बडी मुश्किल से हुआ उसने उसे खूब मथा, राल मिलाई लेकिन मिट्टी ने सोचा कि मेरा तो सस्कार करना है, कुम्भकार ने उस मिट्टी के ढेले को सस्कार करने के लिए उसे चाक पर चढाया, उसको चक्कर भी खिलाया, लेकिन मिट्टी ने तो सोचा कि मुझे तो सस्कारित होना है। तो क्या वह मिट्टी नाराज हुई ? नही। इतने से ही कुम्भकार नही रुका। उसे आकार देकर ऊपर से उसे ठोका भी। आपने कुम्हार को देखा होगा। जोर जोर से करता है मड़मड, लेकिन फिर भी उसके अन्दर मे वह हाथ रखता है और उस घडे को पीटकर ठीक कर देता है—फिर भी मिट्टी सोचती है कि तुम खूब पीटो, मुझे तो संस्कारित होना है, पीटने के बाद भी कुम्हार ने चैन नही लिया और उसको कहाँ रखा ? आग के अन्दर। उसके अणु-अणु मे गर्मी पहुचा दी लेकिन उस मिट्टी ने सोचा कि खूब गर्मी पहुचाओ, लेकिन मैं घड़े के रूप को नही छोड़ूँगी क्योकि मुझे तो सस्कारित बनना है। वह मिट्टी का घड़ा अपनी परेशानियो से जब उत्तीर्ण हो गया तो वह मिट्टी की दृष्टि से सस्कारित बन गया, और बहिनो के सिर पर चढ़ गया।

विचार करते हुए उसके अन्दर आध्यात्मिक भावना का पुट देना है। वैज्ञानिक दृष्टि से उसका समन्वय करते हुए आप, समता सिद्धान्त दर्शन के आधार पर अपने जीवन की गुत्थियों को सुलझाने की कोशिश करें और जो रूढ़िगत परम्पराएँ हैं जिनके अन्दर मानव घुट रहा है। उनके कुछ परिष्कार का प्रयास करें। आज मध्यम वर्ग की कैसी दुर्दशा है? मानव कुछ समझ नहीं पा रहा है कि वह क्या करे? जिसके पास कुछ अधिक पैसा इकट्ठा हो गया है, वे अपने आप में फूले नहीं समा रहे हैं और अपने आपको समझ रहे हैं कि वे तो सब कुछ बन गए, लेकिन जिनके पास इसकी कमी है वे मन मसोस कर बैठे हैं। आज इस विषमता की खाई को पाटने के लिए समता सिद्धान्त दर्शन की नितान्त आवश्यकता है, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने विषम जीवन को समरूप में देख सके।

जीवन की भूमि को सम बनाओ

यह चातुर्मास का समय है और चातुर्मास की दृष्टि से संतों का आगमन हुआ है। इन संतों के आगमन और इस चातुर्मास के प्रसंग से आप आध्यात्मिक क्षेत्र में और जीवन के क्षेत्र में एक दृष्टि से उर्वर बन जावें। यद्यपि भारत देश कृषि प्रधान देश है, जनसंख्या की दृष्टि से यहां किसान अधिक हैं। ये किसान खेती करने के लिए इस प्रकार जमीन के अन्दर बीज डालकर खेती करते हैं और उसके आधार पर जनता का जीवन चलता है। तो यह [illegible] कि [illegible] समझ में [illegible]। आप सोचेंगे कि क्या [illegible] के अन्दर [illegible], [illegible]। मैं [illegible] कि [illegible] आपके [illegible] हो रहे हैं। आप [illegible], अपने जीवन का [illegible] विचार में, [illegible] है [illegible]

जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से बढ कर है। मै तुम्हारी उसी तरह कद्र करता हू। लेकिन तुम्हारा जीवन असस्कारित जीवन चल रहा है। अस्सी वर्ष की हो गई हो लेकिन जीवन मे परिवर्तन नही है। वही पशुपन है, अनाडीपन है। यह कौन सा तुम्हारा जीवन है। मातेश्वरी! अपने जीवन को सस्कारित करो। अस्सी वर्ष मे जो कार्य किया, उससे निवृत्ति लो और जीवन को माँजने के लिए, सन्मार्ग की ओर जाने के लिए जीवन को सुव्यवस्थित रूप मे ढालो। पुत्र का निवेदन सुनने के पश्चात् माता कहने लगी, छोकरा! तू नही समझता। मैंने गरीबी के दिन भी देखे हैं। आज तू करोडपति बन गया तो क्या हो गया! यह पुत्र वधू इस प्रकार की फिजूलखर्ची करती है, यह छोकरे इस प्रकार पैसे बर्बाद करते है—यह मुझे बर्दाश्त नही। इसलिए मैं लड़े बिना नही रह सकती। पुत्र ने कहा, जैसा करोगी वैसा भरोगी। पुत्र की बात मातेश्वरी ने स्वीकार नही की। तब सेठ ने सोचा, इनके जीवन से अब यह सस्कार जाने वाले नही हैं लेकिन जिनके कोमल जीवन हैं, जो अभी बच्चे है, जो तरुण हैं, जो अधेड है उनमे फिर भी अच्छे सस्कार उत्पन्न किये जा सकते है। इसलिए परिवार के सब सदस्यो को एकत्रित करके सेठ ने नम्र भाव के साथ निवेदन किया—आप मेरे परिवार के सदस्य हैं। मेरी आत्मा के तुल्य हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूँ, आप अपने जीवन को समझें। यह जीवन असस्कारित जीवन रहता है तो मुझे दर्द होता है। आप अपने जीवन को सस्कारित बनाने के लिए कुछ प्रण करें। विनीत परिवार के सदस्यो ने सेठ की बात को ध्यानपूर्वक श्रवण करने के पश्चात् कहा, आप क्या आदेश देना चाहते हैं? आपके आदेश का पालन करना पहला कर्तव्य होगा। सेठ ने कहा, यह मेरी माता अस्सी वर्ष की बुढ़िया है। अपने सब परिवार की मुखिया है। लेकिन इसके जीवन

प्रत्येक मानव के लिए भी हितकर है, इसी दृष्टिकोण से मैं यहां कह रहा हूं, इसमें किसी व्यक्ति विशेष या किसी पार्टी विशेष का प्रसंग नहीं है। मैं तो यह चाहता हूं कि व्यक्ति-व्यक्ति में जो विषमताएँ हैं वे दूर हों, व्यक्ति, पार्टी, जाति सब एकरूप होकर मानव के कल्याणार्थ कार्य करें और इस प्रकार आगे बढ़ते हुए स्व-पर के जीवन को पवित्र बनावें।

सामाजिक कुरीतियों के कारण अगर कोई विषम परिस्थिति आ गई है, भेदभाव की कोई दिवाल खड़ी हो गई है, कोई पोइन्ट खड़ा हो गया है तो उसको निकालने की कोशिश करें। उस विषमता को निकालने से आपका जीवन कितना आनन्द और उल्लासमय हो जायेगा यह तो अनुभव की बात होगी।

जीवन में भी एक धरातल बनाइए

चातुर्मास में इस जीवन के समता धरातल के विषय में चिन्तन करना है कि आपने यह व्याख्यान भवन बनाया। यह पहले कैसा था और अब किस रूप में आ गया। एक बगीचा हो गया। अब आप इसके सम एक धरातल पर बैठे हुए हैं। नीचे एक भी कंकर पड़ा नहीं रहा है। कंकर चुभ रहा है क्या? कोई आपको कष्ट नहीं हो रहा है। इसी तरह से आप समाज के अन्दर भी एक

मे नही आ रही है । लेकिन उसका कुछ दृश्य इस तरह से अपने परिवार के सदस्यो की बारी बाधकर उस गाव वाले हमारे सामने रख रहे है। सयोग से एक सस्कारित कन्या जो कि बचपन से अपने जीवन के स्वरूप को समझकर जीवन को सस्कारित करके चलने वाली थी, सुसराल मे पहुची। सासु और स्वसुर को नमस्कार भी किया और उसके परिणाम हेतु शुभ आशीर्वाद चाहा था। उसने अपने प्रफुल्लित नैनो से सासु की आकृति को देखा और सोचने लगी कि मेरी सासुजी के मुँह से आज मेरे लिए सुन्दर आशीर्वाद आयेगा क्योकि मैं इस घर के अन्दर नवीन पुत्रवधू के रूप में परिवार के नवीन सदस्य के रूप मे उपस्थित हुई हू। लेकिन उस कन्या ने देखा सासुजी के मुँह से आशीर्वाद के कोई वचन नही निकल रहे थे बल्कि आकृति मे थोडी सी म्लानता थी। उस चतुर मनोविज्ञान की ज्ञाता, जीवन को सस्कारित करने वाली कन्या ने सासुजी से प्रश्न किया कि सासुजी, आज मेरा इस परिवार के सदस्य के रूप मे आना आपको अच्छा नही लग रहा है ? मैं यह जानना चाहती हू कि किसी भी परिवार के प्रत्येक सदस्य के मन मे प्रफुल्लता आये बिना नही रहती। लेकिन आज मैं इसके विपरीत देख रही हूं, क्या कारण है ? आपको उदासी का क्या हेतु है। आप स्पष्ट बतायें ? उसने जो आजकल की प्रचलित प्रथा थी उनको भी हटा दिया। सासुजी ने पुत्रवधू के वचनो को महत्व दिया और कहा कि बीदनी जी, तुम्हारे आने से उतनी ही प्रफुल्लित हू जितना कि होना चाहिए और जो चिन्ता का रूप आप देख रही हो वह तुम्हारे कारण नही है, उसका अन्य कारण है। वहू ने पूछा कि वह कौन सा कारण है जबकि मैं परिवार की सदस्या बनी हू तो परिवार के ऊपर आने वाली हर विपत्ति के अन्दर मेरा भी हाथ बटाना कर्त्तव्य है। कौनसी ऐसी कुमति का साम्राज्य छा गया जिससे

जाना कहाँ है? हमें छोटी-छोटी बातों में न उलझ कर भगवान के तुल्य बनने की कोशिश करना है। उदाहरण के तौर पर किसी को कलकत्ते जाना है, वह जौहरीबाजार से निकलता है, जौहरी बाजार के अन्दर कोई व्यक्ति आकर उससे लड़ने की कोशिश करे कि यहाँ आते हो मैं तुम्हारा मजमा खड़ा कर दूँगा, मैं यह कर दूँगा वह कर दूँगा उस समय वह कलकत्ते जाने वाला सोचेगा कि इस भाई का उत्तर दूँगा इससे कुछ प्रत्यालाप करूँगा तो रेल का टाइम चूक जाऊँगा और समय पर कलकत्ते नहीं पहुँच पाऊँगा, तो उस वक्त वह जौहरी बाजार के अन्दर उस व्यक्ति से लड़ने के लिए खड़ा रहेगा या झगड़े की बात करेगा या गलागली की बात करेगा या चुपचाप निकलकर चला जाएगा? गाड़ी के समय को समझने वाला, कलकत्ते टाइम से पहुँचने की इच्छा रखने वाला आदमी, उस व्यक्ति से लड़ने की कोशिश नहीं करेगा। इसी तरह से हमारा परम लक्ष्य बड़ा महान है और काफी दूरी तय करके जाना है तो, जो जीवन के क्षेत्र में कई जौहरी बाजार वाली बाधाएँ खड़ी करदें और गलत वातावरण तैयार करने की कोशिश करें तो, मैं सोचता हूँ कि उनकी तरफ ध्यान नहीं करते हुए अपने जीवन की मंजिल पर तेजी से आगे बढ़ते हुए बहुत आदर्श हासिल करने का प्रयत्न होना चाहिए।

आप इस बात को ध्यान में रखेंगे कि समता-सिद्धान्त दर्शन, समता जीवन दर्शन, समता आत्म दर्शन और समता परमात्म दर्शन इन चार बातों का उद्देश्य जीवन को ऊँचा उठाना है, जीवन का परम अनुसन्धान है। आप यदि इन बातों का गहराई से चिन्तन मनन करेंगे, समता को जीवन में उतारने का प्रयत्न करेंगे—तो जीवन के दुःख दर्द और चिन्ताएँ अवश्य ही दूर होंगी और आत्मा परमात्मा की स्थिति प्राप्त हो सकेगी।

[illegible], १० जुलाई १९७२

●●



गुरुदेव ! तुम्हे शतशत वदन
स्वीकार करो यह अभिनन्दन

आचार्य श्री नानालालजी म०

के

जयपुर चातुर्मास

के

पावस प्रवचन हमें
सतत मार्ग दर्शन
करते रहें ।



सरदारमल उमरावमल ढड्ढा

जौहरी बाजार, जयपुर-३

सूर्य की किरणो के सामने बिखेर दें, दुर्गन्ध उड़ जावेगी और वस्तु का वास्तविक स्वरूप सामने झलकने लगेगा।

गंदगी को दबाओ मत

आप जानते हैं, व्योपारी जब अपनी दुकान पर बैठता है और कचरा निकालने का प्रसग आता है तो वह रुपया पैसा नोट और कोई बढिया चीज है तो गद्दी से उनको उठाकर तिजोरी मे रखेगा और कचरे को झाड़कर, दुकान से बाहर फेंकेगा। यह तो प्रचलित पद्धति है। लेकिन कदाचित् किसी व्यापारी के दिल मे यह आ जाय कि सोने चाँदी, रुपये नोट हैं, उनको तो उठाकर बाजार मे फेंक दें और जितना कूड़ा करकट है उसको इकट्ठा करके, या तो गद्दी के नीचे दबा दें या तिजोरी मे रख दें। यदि ऐसा वह करने लग जाय तो उस व्यापारी को क्या कहेगे ? बेवकूफ और मूर्ख ही तो कहेगे ?

हम इस जीवन की दुकान पर भी बैठे हैं। क्या हमने अपने जीवन के स्वरूप को भी समझा है। प्रश्न वही है, "किं जीवनम्" जीवन क्या है ? क्या इस प्रश्न पर आपने कुछ चिन्तन किया है ? इस जीवन की दुकान पर बैठकर आप कूड़े करकट कचरे को बाहर फेंक रहे हैं या उसको जाजम के कोने नीचे के दबा रहे हैं ? इसका तात्पर्य यह है कि इस जीवन के अन्दर कूड़ा कर्कट गदगी भरी हुई है। इस गंदगी को इन्सान बाहर फेंकना नही चाहता है। नयी नयी गदगी पैदा हो जाती है तो भी उसको छिपाने की कोशिश करता है और सद्गुण रूपी बहुमूल्य रत्नो को बाहर फेंकने की कोशिश करता है। जीवन के अन्दर पाप की वृत्ति आयी, मनुष्य ने पाप किया और पाप करना स्वाभाविक भी है। परन्तु पाप करने के बाद मे पाप को पाप कहने की ताकत भी उसकी जबान में नही आती है। प्रकारान्तर से वह पाप प्रकट भी हो जाय तो भी मनुष्य चाहेगा कि पाप प्रकट

को पुकारा जा सकता है। उनमें से एक सुमतिनाथ भी हैं। सुमति का अर्थ है सद्बुद्धि।

जिनकी सन्मति होती है, जिनका ज्ञान सम्यग् होता है, पवित्र अध्यवसाय जिनकी आत्मा के अन्दर चलता है—वे सुमति कहे जा सकते हैं। लेकिन ऐसी सुमति रखने वाले जो समस्त प्राणियों के स्वामी के रूप में प्रसिद्ध हैं, वे सुमतिनाथ कहलाते हैं। यहाँ सुमतिनाथ भगवान् के चरणों में कवि ने प्रार्थना के रूप में संकेत किया है और यह बताया है कि सुमतिनाथ सुमति के दाता हैं।

सुमति के दाता दयालु कहलाते हैं। वे सुमति का दान भी करते हैं। आज सुमति के लेने वाले व्यक्तियों की कमी नहीं है? आप देखो, आज तो संसार के अन्दर जितने प्राणी हैं उन सब प्राणियों को कुमति ही सता रहा है। प्राणी जब सुमति को छोड़ कर कुमति के अधीन होता है तब वह अपने आपको संकट में डालता है। उसका परिवार में सम्मान नहीं रहता है। वह समाज में भी विषमता पैदा करता है और राष्ट्र के अन्दर भी बहुत भयावह दृश्य उपस्थित कर देता है। यह कुमति का कार्य है। इस कुमति के कारण से ही संसार

सस्कारित जीवन के साथ लक्षण को समझने का प्रयास करेंगे तो समझ मे आयेगा और बुद्धि का निखालिश रूप सामने आयेगा। इस वारीक बात को समझने का प्रयास कर रहे है। सस्कार किस रूप में कर रहे हैं। आप कह दें—महाराज, आदिवासी की तरह हम थोडे ही हैं। हमारा जीवन तो सस्कृतिमय है। हमारे जीवन की गति तेज है। हम अपनी बुद्धि, से कहा से कहा पहुच गये हैं, कहा कहा पर दौड रहे है। कितनी पेनी बुद्धि, सूक्ष्म दृष्टि हमारे पास आ गई है—क्या यह हमारे जीवन का सस्कार नही हैं? क्या आप इसको सस्कार नही मानेंगे? यह आप तर्क दे सकते हैं। मैं इस तर्क के पीछे आपको चिन्तन देना चाहता हू। आप स्वय सोचिये। आज का इन्सान अपनी वुद्धि का परिमार्जन करके चल रहा है, यह अवश्य है कि आदि युग का जो मनुष्य था, उसकी जो प्रतिभा थी, उसका जो चिन्तन था, उसके रहन-सहन की जो पद्धति थी, जिस प्रकार से वह रहता था उसमे और आज मे रात दिन का अन्तर आ गया है। कहा आदि युग का मनुष्य और कहां आज का मनुष्य।

इसलिये आप गभीरता से चिन्तन कीजिये। मैं सिर्फ आप लोगो को ही नही, बुद्धजीवी वर्ग को, विद्वान लोगो को सम्बोधन कर रहा हू कि वे अपने दिल-दिमाग से सोचें, चिन्तन करें कि आज का यह जीवन वस्तुत सस्कारित है। आप चिन्तन करेंगे तो अनुभव होगा कि वास्तव मे यह जीवन सस्कारित नही है। विज्ञान से भौतिक तत्वो की और वौद्धिक शक्ति की भी वृद्धि हुई है। मानव विद्युत गति से दौड रहा है, परन्तु जीवन के इस प्रश्न को ढूढ़ने के लिये, इस प्रश्न को हल करने का क्या प्रयास किया जा रहा है? इस स्थिति के साथ मैं आज यह वता रहा हू कि आज जितनी विकास की स्थिति है उस पर आप सोचें कि क्या यह आपके जीवन का सस्कार है? क्या आपके जीवन के अन्दर उससे शान्ति मिलती है। जितना वुद्धि का विकास हुआ है उसके साथ ही साथ आपके जीवन को शान्ति

वाणी के प्रसंग में आपके सामनेविचार रखे हैं, उनके रखने का प्रसंग भी है। जिस समय जम्बूस्वामी सुधर्मा स्वामी के पास पहुँचे उस समय जम्बू स्वामी के मन में प्रबल जिज्ञासा हुई—मैं भी सुमति प्राप्त करूँ। इस संसार में रहते हुए कुमति के चक्र में अनादिकाल से भटकता हुआ और झंझावतों में जीवन बिताया, लेकिन अब शान्ति की स्थिति में पहुँचा हूँ। सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी को उपदेश दिया और जिस तत्व का सुमति के साथ सम्बन्ध जुड़ता है उसका संकेत देते हुए कहा—

उस समय भगवान महावीर राजगिरि पधारे, राजगिरि नगरी में ऋद्धि सिद्धि की प्रचुरता थी।" उस नगरी में मानव की सुमति का भली-भांति विकास करने के लिए उन्होंने सुधर्मा स्वामी को जो बातें बतलाई उन ही बातों को सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी के सम्मुख प्रकट कर रहे हैं। वे बातें हमारे सामने भी शास्त्र के माध्यम से आ रही हैं। हम सुमति के द्वारा शांति का अनुभव करें और परस्पर उज्ज्वल बना सकें—इस बात का प्रसंग लम्बे चौड़े विस्तार से भाव या सूक्ष्मता से जो भी मिले वह श्रवण करें। यह

तक बोलने की और लडने की ताकत मिल जाती है। जैसे कहा है '

देते गाली एक हैं, पलटे गाल अनेक,
जो गाली पलटे नहीं तो रहे एक की एक ॥

कोई गाली गलोज दे रहे हैं तो देने दीजिये उसका उत्तर मत दीजिये वह गाली एक की एक रह जावेगी किन्तु यदि उत्तर मे पुनः गाली दी गई तो अनेक हो जावेंगी। उस बहिन ने बुढिया की गालियो का कोई उत्तर नही दिया। बुढिया बोल-वोल कर थक गयी। उस नवीन पुत्र वधू ने सोचा कि आज का कार्यक्रम पूरा हो गया। उसने सरलता के साथ प्रश्न किया– सासुजी ! आपका कार्य पूरा हो गया ? इतना कहते ही तो बुढ़िया फिर बकने लगी और लडती रही। दो तीन तरह के प्रसग आये आज वह बुढिया न पानी पी सकी और न शान्ति से अन्न ग्रहण कर सकी। वह बोलती रही। उसके मस्तिष्क मे गर्मी चढ़ गयी। मस्तिक की कोशिकाओ पर बडा बुरा असर पडा। खून की नाडियो पर विपरीत असर पडा। और वह वेहोश होकर गिर पडी। लेकिन सस्कारित जीवन वाली उस तरुणी पर कोई असर नही हुआ। वह सोचती है, 'यदि मैं इन शब्दो को ग्रहण करूँगी तो मेरे पर इनका असर होगा। अन्यथा नही। उसका सोचना भी तथ्य युक्त है वडे बडे वाजारो मे दुकानें लगती हैं, हाट लगती है। यहाँ शायद जयपुर मे तो न लगती हो ? गांवो मे तो लगती है। मैंने सुना है यहा भी लगती है। तरह तरह के व्यौपारी माल असवाव लेकर जाते है। उनमे जूते के व्यापारी भी आते हैं और जोडे के जोडे उठा कर जाने वालो को वताते हैं 'एक दूँ या दो दूँ।' कदाचित आप भी उस वाजार मे निकल जाओ तो आपको भी बता देगा। क्या आप उस समय उससे लडोगे ? क्या सोचेंगे ? आप यह सोचोगे कि यह इसका व्यापार है। क्या करे वेचारा जो चीज है वह वता रहा हैं। मुझे वह चीज नही चाहिये।

करते हैं। कभी-कभी मुख्यवस्त्रिका तक उठा ले जाते हैं, कभी-कभी वस्त्र उठाकर ले जाते हैं। उन वस्त्रों को वे समझते नहीं हैं कि वे कैसे वस्त्र हैं और उन वस्त्रों की चिन्दी-चिन्दी करके, उनको बता-बताकर फाड़ डालते हैं। सिर्फ किसलिए? रोटी के टुकड़े के लिए और आप उनको रोटी डाल देते हैं तो आपकी जिन्स वे छोड़ देंगे। और नहीं देंगे तो वे उन वस्त्रों को बता-बताकर फाड़ेंगे। आप मानिये तो आप जैसे वस्त्रों की कद्र कर रहे हैं, आप जिन वस्तुओं के पीछे बहुत मुग्ध हो रहे हैं उन्हीं वस्तुओं को ले जाकर वे उनका दुरुपयोग करते हैं। आप कहेंगे महाराज बन्दर जाति है। उनकी चेष्टा और शरीर करीब मनुष्यों जैसी है लेकिन फिर भी मनुष्यों जैसे संस्कार नहीं हैं। उनका असंस्कारित जीवन है। आप बन्दरों के जीवन का असंस्कारित जीवन कहेंगे और संस्कारित जीवन को आप मनुष्य जीवन कहेंगे। बन्धुओ! सोचने की बात है। आज संस्कारित और असंस्कारित जीवन का बड़ा प्रश्न है। जो मनुष्य जीवन जी रहा है [illegible] जीवन कैसा जी रहा है? "कि जीवनम्" जीवन कैसा है? [illegible] है, [illegible] संसार के सामने मुँह बाये [illegible] है। [illegible] होता है और [illegible] नहीं [illegible] मनुष्य का जीवन [illegible] नहीं बदला सकता। जीवन एक [illegible] जा रहा है। मशीन [illegible] मिल जाती है, मशीन [illegible] विकास [illegible] मानव जीवन की [illegible] विकास किया है या नहीं? [illegible] किया जाता [illegible] आत्मा [illegible] अनुमान [illegible] [illegible] इसलिए [illegible] [illegible] मैं कहता हूँ कि [illegible]

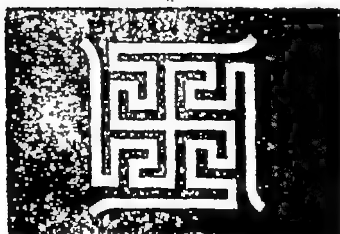
परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालालजी महाराज

के

जयपुर चातुर्मास मे प्रदत्त प्रवचन

हम सबको प्रेरणा प्रदान करते रहे ।





स्थिति नहीं, वही जीवन की यही स्थिति है। आज आप प्रत्येक जीवन तत्त्व का चिन्तन कीजिए, जीवन के विषय में मैं कह रहा हूँ। इसके साथ ही साथ आप संसार में जिन पदार्थों का अवलोकन करते हैं उनमें भी सम्मानित और असम्मानित दोनों तरह के पदार्थ पाये जाते हैं। जो सम्मानित पदार्थ हैं उनका जरूर महत्त्व है, पर जो असम्मानित पदार्थ हैं उनका कोई महत्त्व नहीं।

आप कभी-कभी अपनी दृष्टि से विवाह शादियों के प्रसंग पर इन महिलाओं के सिर पर मिट्टी के कलशों को देखते होंगे। सम्भव है ऐसे शहरों के अन्दर नहीं हो लेकिन विवाह शादियों के प्रसंगों पर घड़े पर धागा बांध कर उसको गले में जेवर पहनाया जाता है। यहाँ शायद यह प्रथा नहीं रही। यह प्रथा कम हो रही है, लेकिन गाँवों के अन्दर देखने को मिलता है कि महिलाएँ विवाहों के प्रसंग पर सुन्दर वस्त्र पहन कर, जेवर पहन कर गीत गाती हुई कुम्हार के यहाँ पहुँचती हैं और कलशा ले आती हैं, बड़े और छोटे घड़ों के ऊपर कुछ चन्दन लगाकर अपने जेवर उन घड़ों के गले में डालती हैं। देहात के भाइयों को अवश्य यह देखने को मिलेगा। यह फिर वही माल के घड़े ही हैं, शायद [illegible] इनके ऊपर जनता में नहीं [illegible]

आप कुछ चिन्तन, मनन करेंगे तो यह बात आपको भी स्पष्ट हो जावेगी। आपका मस्तिष्क जो कुछ इधर-उधर के पुस्तकीय ज्ञान से सना हुआ है और जो कुछ तज्जन्यसस्कार आपके मस्तिष्क मे जमे हुए है, वे सस्कार एक दृष्टि से काल्पनिक हैं, स्व-अनुभूति के नही हैं। अनुभूति के सस्कार जो कि प्रत्यक्ष-विना पौद्गलिक इन्द्रियो के सहारे स्वानुभव के आधार पर होते हैं वे ही सजीव अनुभूति के संस्कार कहलाते हैं। जो सुनने से, स्मृति से, या कल्पना से वस्तु का अनुभव किया जाता है वह भी सामान्य तौर पर अनुभूति तो कहलाती है, लेकिन वस्तुत वह साक्षात् अनुभूति नही कही जा सकती। मैं उदाहरण देकर इसे थोडा स्पष्ट कर दू। एक व्यक्ति के पैर मे काटा लगा। दूसरा व्यक्ति उसके काटा लगने का अनुभव करता है, और कल्पना करता है, कि इस काटा लगने से उस व्यक्ति को कितनी वेदना हो रही होगी और इसके लिये वह अपने पैर मे पूर्वकाल मे कभी काटा लगने की वेदना से तुलना करता है, तो एक सीमा तक वह दूसरे पुरुष के लगे काटे से उत्पन्न वेदना का अनुभव कर लेगा, पर स्वय के प्रत्यक्ष अनुभव मे और उस पूर्व स्मृति या कल्पना से ज्ञात अनुभव मे काफी अन्तर रहेगा।

जहा इस जीवन मे प्रत्यक्ष अनुभूति या सस्कार होते है वे जीवन के वास्तविक तथ्यो के द्योतक होते है। जो सुने सुनाये सस्कार होते हैं, वे जब तक प्रत्यक्ष अनुभूति में नही उतरते तब तक प्रत्यक्ष की अनुभूति के सस्कार नही बन सकते।

आप ध्यान से देखेंगे कि हमारे इस जीवन मे आशा का कहा कितना स्थान है? या कतई स्थान है ही नही। इसी पर आज विचार करेंगे।

प्रत्यक्ष आत्मिक अनुभव प्राप्त सन्तजन जो जीवन के सस्कारित स्वरूप के साथ जीवन के प्रश्न को हल करने वाले है, उनका कथन है कि एकान्तत आशा का त्याग नही हो सकता। अगर इन्सान

संस्कारित बनने के लिए सहिष्णु बनो !

आज इन्सान अपने मन में क्या अभिलाषा रखता है ? यह कि मैं दुनियां का मान-सम्मान ग्रहण करूँ, दुनियां के सिर पर चढ़ कर दुनिया का वन्दनीय और पूजनीय बनूं। अरे तू आदर और सत्कार के पीछे दीवाना बन रहा है, मान-सम्मान लेने के पीछे भाग रहा है। तू अपने जीवन को देख, तुम्हारा जीवन क्या है, तू मिट्टी के ढेले की तरह है या मिट्टी के घड़े की तरह है ? मिट्टी के ढेले ने तो मान सम्मान की परवाह नहीं की। मिट्टी के मन में तो यह ध्यान रहा कि मुझे संस्कारित बनना है। संस्कारित बनने में वह अनेक आपत्तियों को सहकर पकी तो मिट्टी का सत्कार हो गया। यदि इन्सान को अपना जीवन जीना है, जीवन के प्रश्न को हल करना है कि मेरा जीवन क्या है ? तो सबसे पहले उसे मिट्टी से शिक्षा लेनी चाहिए कि मिट्टी के समान मैं निश्चिन्त, दृढ़, धैर्यवान बन जाऊँ। मिट्टी पर कुम्हार ने थपेड़े लगाये, मुझ पर भी थपेड़े लगाने वाला कोई आ जाय तो उस समय में शान्त एवं स्थिर रहता हूं या नहीं ? आत्मचिन्तन में लीन होता हूं या आत्मा के रूप को विस्मृत कर जाता हूं। मैं शान्ति को खोता हूं या रखता हूं ? यह प्रत्येक व्यक्ति को चिन्तन करना है। यह चिन्तन नहीं होगा तब तक जीवन संस्कारित नहीं हो पायेगा। [illegible] थपेड़े खाना तो दूर [illegible] उपकार [illegible] है, मेरे [illegible] उपकार [illegible] किसी [illegible] लिये बिना नहीं [illegible] हो जाता है [illegible] में [illegible] जिनवाणी [illegible] है। [illegible] आ गया।

की आशा है वह नहीं, मेरी आशा कुछ और ही है। उसमे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इत्यादि हैं। उन्होंने सबसे पहले धर्म लिया उसके बाद अर्थ और काम को लिया है, और मोक्ष को अन्त मे लिया है। आप देखेंगे धर्म और मोक्ष आगे पीछे जुडा हुआ है। अनुसन्धान का स्वरूप जुडा है—प्रारम्भ में धर्म है, बीच मे अर्थ और काम है और अन्त मे मोक्ष है। अर्थ और काम को छोडा नही है। इसको संशोधित किया है। इसको बीच मे रखकर स्वतन्त्र छूट नही दी है। स्वतन्त्र छूट देने से यह जीवन को आवारा बना देगा। आप देखेंगे जब एक अपराधी सरकार की ओर से पकडा जाता है तब वह बीच मे चलता है। पीछे सिपाही आगे सिपाही और बीच मे किसको रखा जाता है? अपराधी को। जो अत्यन्त उद्दण्ड और स्वच्छन्द होता है तो वह उसमे नियत्रित पाया जाता है। वैसे ही धर्म और मोक्ष इन दो छोर से रहित जो काम और अर्थ हैं ये अत्यन्त उद्दण्ड इन्सान के समान हैं। मानव इन दोनो की अनियत्रित स्थिति से हैवान और राक्षसी धर्म पर पहुच जाता है चाहे वह कितना ही बड़ा अधिकारी या अर्थ सम्पन्न व्यक्ति क्यो न हो। हम पौराणिक रामायण का चिन्तन करें तो यह विषय और भी स्पष्ट हो जायेगा रावण जैसा राजा जिसके पास तीन खन्ड का आधिपत्य था, जिसका जीवन अर्थ से सम्पन्न था लेकिन उसके जीवन के आगे पीछे का छोर नही था। धर्म और मोक्ष की मुख्य स्थिति नही थी। अर्थ और काम की दिशा थी, इसी स्थिति मे वह चलता था। आज इन्सान राम के स्वरूप को कुछ और दृष्टि से देखता है, और रावण के स्वरूप को कुछ और दृष्टि से देखता है। इस प्रकार की पूर्व घटित घटनाए अनेक आ सकती हैं लेकिन वर्तमान जीवन का परिमार्जन करना है तो उन दोनो तत्त्वो पर नियन्त्रण लगाना होगा।

अर्थ, काम पर धर्म और मोक्ष का नियन्त्रण हो !

धर्म और मोक्ष इन दोनो को आगे पीछे रखता है। ये कविताएं

परमाणु नहीं थे। चीज वही थी। लेकिन उनका संस्कार हो गया। यहाँ छाया में बैठे हुए हैं टीन की, यह टीन कहाँ से आई? लोहे से। यह टीन संस्कारित बनी लोहे के ढेले से। लोहे के पत्थर का सिनाई के पास बहुत बड़ा पहाड़ खड़ा हुआ है जिस पर लोग टट्टी-पेशाब करते हैं। वह लोहे का पत्थर निकालकर सिनाई की भट्टियों में पहुँचा। भट्टियों में पहुँच कर उसने संस्कार ग्रहण किया, टीन के रूप में परिवर्तित हुआ और मनुष्य को छाया देने वाला बन गया। वाह रे लोहे! तू संस्कारित होकर दुनिया को छाया देवे, शान्ति देवे लेकिन मानव नाम धारण करने वाला मनुष्य—वह अपने आपको मानव कहलाते हुए दुनिया को शान्ति देता है या अशान्ति देता है, दुनिया के लिए फूल बनता है या दुनिया के लिए शूल बनता है—क्या मानव ने अपने जीवन में यह सोचा है? मैं आपको इस विषय में क्या बताऊँ प्रभु महावीर ने कहा है—संस्कारित जीवन जिस मानव का, व्यक्ति का पुण्य का बन जाता है, उसका जीवन बदल जाता है, जिसका जीवन संस्कारित नहीं होता है वह चाहे जितनी अवस्था का

समता के धरातल पर लाया जाय। समता की पराकाष्ठा तक इसे कैसे पहुचाया जाय ?

यदि इन प्रश्नो को हल करने के लिए अपने सभी प्रकार के कर्त्तव्यो का पालन करने के लिए और जीवन की चरम परिणति, चरम ध्येय को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहना है तो उसके लिए भी वर्तमान जीवन आवश्यक है। वर्तमान जीवन से बढते हुए चरम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए पुण्य उपार्जन करना आवश्यक है, उसका एकान्त त्याग करने की बात करना युक्ति सगत नही है। वह वीतराग देव के रूप मे पहुचनें के लिए सस्कारित भूमिका नही है। हा, साधना के चरमबिन्दु पर जब प्राणी पहुच जावे तब यह पुण्य भी त्यागने योग्य हो जावेगा। इससे पहले पुण्य छोड़ने योग्य नही है,पुण्य सर्वथा ज्ञेय रूप मे नही समझा जावे, पर त्यागने योग्य भी समझा जावे। यह हमारा सूत्र है। साधना की पराकाष्ठा पर, चरम परिणति पर जब प्राणी पहुँच जावे तब सभी प्रकार के पुण्य भी त्यागने योग्य हैं। इसका ध्यान रखिए। इसको एक दृष्टान्त देकर मैं स्पष्ट कर दूँ ताकि आपकी समझ मे ठीक तरह से यह तत्व आ जाय।

नाव भी आखिर छोड़नी है

किसी ने हमे यह जानकारी दी कि समुद्र के दूसरे किनारे पर एक कोई बहुत सुन्दर नगर है, बडे भव्य भवन वहा बने हुए हैं जहा कि बहुत उच्च कोटि के मणि-माणिक्य हमे मिल सकते है। अब किसी जानकार से हम पूछते हैं कि समुद्र के उस किनारे पर कैसे पहुँचा जाय। जानकार व्यक्ति आपको जानकारी देता है कि देखो भाई, इस किनारे पर जहा हम हैं वहा घाट बने हुए हैं। उन घाटो पर दो प्रकार की नौकाएँ हैं। एक पत्थर की बनी हुई है और दूसरी लकड़ी की। आप यह जानकारी कर लेना कि कौन-सी नाव पत्थर

में जीवन में अच्छे संस्कार नहीं हैं, वह हर किसी के साथ लड़ती झगड़ती है। आप लोग उसके ऊपर रोष न करें, उसकी बात पर ध्यान नहीं दें। बूढ़े और बच्चे को एक समान मान कर माफ करें जिससे घर में कलह का वातावरण पैदा नहीं हो। सब परिवार के सदस्यों ने अनुशासन के नाते यह स्वीकार किया और घर में शान्ति का वातावरण बन गया। लेकिन बुढ़िया का असंस्कारित जीवन समाप्त नहीं हुआ। उसने सोचा, परिवार के सदस्य मेरे से लड़ाई नहीं करते। मुझे लड़ाई किये बिना चैन नहीं मिलता। वह घर से बाहर निकली, पड़ोसी के घर पहुंची। वहां अपने असंस्कारित जीवन का प्रयोग किया। उसकी बातों को सुनकर पड़ोसी के परिवार के सदस्य लड़ने लगे। एक घर में आग लगाई, फिर दूसरे घर में पहुंची। दिन में कई घरों में पहुंच कर सब के यहां लड़ाई झगड़े करा दिये। और शाम को अपने घर में वापिस पहुंच गई। यह उसका प्रति दिन का कार्यक्रम बन गया। असंस्कारित जीवन का

यह सोचकर जितनी देर हवाई जहाज ने वहा विश्राम लिया उतनी देर तक ही विश्राम करके हवाई जहाज मे बैठकर कलकत्ता के लिये प्रस्थान कर गया तो कलकत्ता पहुच जावेगा। जितनी देर वह वहा रहता है उतनी देर तक उस भव्य भवन में विश्राम करता है और उसी दृष्टि से उसकी कामना भी करता है तो वह जैसे भवनो की कामना करता हुआ भी कलकत्ता ही पहुचता है। इसी प्रकार केवल इस विश्राम की दृष्टि से शास्त्रकारो ने कहा है—"सग्ग कामए"

इसका इतना ही अर्थ समझिये कि विश्राम स्थल पर थोड़ा विश्राम ले ले, अपनी यात्रा की थकान उतार ले और फिर अपनी यात्रा अन्तिम लक्ष्य प्राप्ति हेतु शुरू कर दे।

इसी हेतु आगे कहा है—मोक्ष कामये।

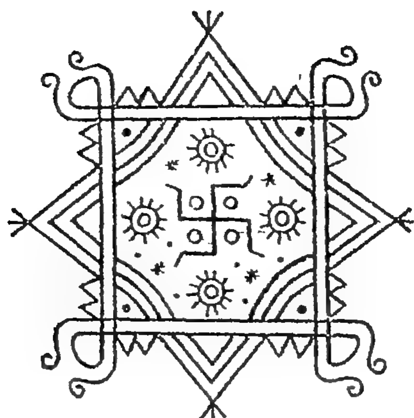
मोक्ष की कामना लेकर चलता है और बीच मे विश्राम कर लेता है अत. यह आकाक्षा इससे सम्बन्धित है इसलिये त्याज्य नही है।

अब कोई यह प्रश्न करे कि मोक्ष को आकाक्षा करने मे और अर्थ और काम की आकांक्षा करने मे क्या अन्तर है?

जहा मोक्ष की आकांक्षा करना प्रकाश है वहाँ अर्थ और काम की आकांक्षा करना अन्धकार है अभिलाषा करने का तात्पर्य अराजकता की इच्छा करना नही है। मोक्ष की अभिलाषा रखते हुए अर्थ और काम मे उलझ जाता है तो वह अपने गन्तव्य स्थल तक कैसे पहुचेगा? अपने चरम लक्ष्य को कैसे प्राप्त करेगा?

अब कोई आगे चलकर कहे कि यह क्या आकांक्षा वाकाक्षा लगा रखी हैं। हमे कोई किसी तरह की आकाक्षा नही रखनी है। तो यह भी कसे हो सकता है? एक व्यक्ति जयपुर जैसे शहर मे इधर उधर परिभ्रमण कर रहा है। इधर-उधर पथभ्रष्ट-सा लक्ष्य-हीन होकर भटकता फिर रहा है, उसे कोई पूछता है कि भाई इधर-उधर क्यो भटक रहे हो, यह सारा श्रम क्यो कर रहे हो?

का कुछ हल आ चुका है। आपके घर के अन्दर काफी सदस्य हैं, एक एक सदस्य की बारी बांध दी जावे, एक कमरे के अन्दर गादी तकिये डालकर बुढ़िया को बिठा दीजिए, वह आपके घर की अशान्ति एक ही कमरे में रहेगी और सारे नगर में अशान्ति भी नहीं रहेगी। सेठ ने कहा कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है लेकिन मेरे परिवार के सदस्यों से यह समस्या हल होने वाली नहीं है। शिष्ट सज्जन ने कहा कि क्यों? तो कहा—परिवार के सदस्यों को मैंने संस्कार दे दिये हैं कि बुढ़िया चाहे जितना ही कुछ कहे उसको चुपचाप सह लेना है और कुछ भी उत्तर नहीं देना है। जैसे बच्चे की बात को सुनकर हंसना है उसी तरह से बुढ़िया की बात को सुनकर हंस देना है। अब मेरे परिवार के सदस्य उससे लड़ाई नहीं करेंगे उसकी बात को सुनकर हंसते रहेंगे। तो इससे बुढ़िया को शान्ति नहीं होगी और फिर कमरे से बाहर निकलकर



परम श्रद्धेय **आचार्य श्री नानालालजी म० सा०**

की

पीयूष-वर्षिणी प्रवचन गंगा

जन-मन के पातक धो डाले !



उसको मन की शान्ति कोमल कमल के समान है मुरझा गया। आप स्पष्ट कहें मेरे से बन सकेगा तो मैं उसमें भाग लूंगी। बापू जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा और सारा वृत्तान्त सुनाया कि कठोपनिषद् में कहा इस तरह से उपस्थापित पूछा जाता था। गाँव के लोगों में सारा व्यवहार है और बारी बारी से प्रत्येक परिवार से एक एक सदस्य भेज जाने का निर्णय हुआ है मेरे घर के सदस्य के जाने का आज प्रसंग है और एक सदस्य पहुंचा तो वह बुढ़िया चाहे वह ८० वर्ष की है लेकिन उसका जीवन मिट्टी के ढेर में खो गया बीता है और इसके आनन्द पर परिवार के लिए प्रयोग करेगी कि जो

जय भगवान की या भक्त की ?

प्रभु के लिए विशेषण दिया गया है कि "जय जय जगत शिरोमणि", हे जगत् के शिरोमणि, यहाँ जगत को एक शरीर माना गया है,उसके सिर की कल्पना की गई और उसके ऊपर मणि के रूप मे प्रभु को याद किया गया है। जो जगत् के सिरमोर हैं, जगत के स्वामी हैं उस स्वामी की जय चाही गई है। लेकिन सोचने का विषय है कि क्या कवि प्रभु की जय बोले तब उनकी जय होगी और प्रभु की जय न बोले तो भगवान की जय नही होगी। इस कल्पना से यदि कोई सोचता है तो यह सोचना ठीक नही है ? भगवान की तो सदा जय है। आपके जय बोलने से उनकी जय होगी और आपके जय नही बोलने से उनकी जय नही होगी यह बात नही है। कवि या भक्त भगवान की जय बोलता है तो वह भगवान की नही, बल्कि अपनी जय चाहता है। कभी-कभी हिन्दुस्तान की जनता भारत की जय बोलती है। भारत क्या है ? भारत देश है या भूमण्डल है या भारत के अन्दर रहने वाली जनता है। आप सोचेंगे कि भारत को जय के पीछे भारत सरकार की जय नही है लेकिन भारत के अन्दर रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की जय है। जैसे भारत की जय मे भारतवासियो की जय आती है, और पाकिस्तान की जय बोलने से पाकिस्तानवासियो की जय मानी जाती है ऐसे ही अमेरिका, इग्लैड आदि विभिन्न देशो की जय विभिन्न सरकारो की जय, वहा की जनता की जय समझी जाती है। आप सोचिए यह तो एक एक देश की सरकार की जय है, लेकिन भगवान के राज्य मे कौन सा देश है। हिन्दुस्तान है या पाकिस्तान, अमेरिका, इग्लैड, रूस, जापान क्या है, भगवान के राज्य मे समग्र देश है। एक दृष्टि से भगवान तो समग्र के अन्दर बैठे हुए हैं। समग्र ससार प्रभु की छत्रछाया के नीचे है। एक एक देश की, सरकार की जय बोलने से एक एक की जय

विन्नाणेण समागम्म धम्मसाहणमिच्छिउं

—उत्तराध्ययन

विवेक-ज्ञान से ही धर्म के साधनों का निर्णय हो सकता है।

---

३ | जीवन का स्वरूप

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो,
पतित उधारन हारो।
पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो।
जदपि धीवर भील कसाई,
अति पापिष्ट जमारो।
तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज,
पावे भवनिधि पारो।

स्वामी बना जाय। इस प्रकार मस्तिष्क ऐसी उच्चभावना का बने और इस भावना का सस्कार यदि मनुष्य के मस्तिष्क मे हो तो मनुष्य उन्नति पथ पर आगे बढ सकता है, किन्तु जब ऐसे सस्कार नही रहते हैं तो वह हतोत्साहित होकर मानसिक घुटन का अनुभव करता हुआ सदा के लिए मन मसोस कर बैठा रहेगा और कभी भी उन्नति के शिखर पर नही पहुच पाएगा।

अर्थवादी दृष्टि :

शास्त्रकारो ने यह बतलाया है कि तू भले ही अपनी लघुता व्यक्त कर ले। भले ही सेवक बन जाय लेकिन विश्वास इस प्रकार का दृढ रख कि मैं भगवान के तुल्य बन सकता हूं। मेरे अन्दर भी वह भावना है, मेरे अन्दर भी वह शक्ति है, और मैं भी एक दिन उस पद के योग्य बन सकता हूँ। हाँ, इस प्रकार का उत्साह जब मनुष्य के मस्तिष्क मे आता है तो पुरुषार्थ के क्षेत्र मे अपनी गति तीव्र कर देता है और जब सच्चे पुरुषार्थ की ऐसी स्थिति बने तभी जीवन का सही निर्माण हो सकता है, लेकिन वह जीवन के सही रूप को समझे और सही दिशा का अनुसरण करे तभी वह आगे बढ सकता है। लेकिन जब जीवन क्या है इसका भी उसको पता नही। कि जीवनम् ? इस प्रश्न का हल उसके पास मे नही है तो कैसे वह विकास करेगा, किस स्थिति मे वह आगे बढेगा ? आज मैं आपके सामने जो प्रश्न उपस्थित कर रहा हू कि जीवन क्या है इस विषय मे आपको, हमको और सबको सोचना है। यह विषय क्या है इसके सोचने के विषय मे जब चलते हैं तो आज कुछ मनुष्य जिनका दृष्टिकोण ससार के पदार्थों की ओर लगा हुआ है वह प्रश्न कर बैठता है, वह कहता है—

कि आवश्यकता जीवनस्य ?
'अर्थाधिकार-कर्तव्यानां त्वस्त्येव'

वाहर रखना, ताकि दुनिया देखे कि सिकन्दर सब कुछ लेकर आया था लेकिन जव जा रहा है तो खाली हाथ वह जा रहा है,हाथ फैलाकर जा रहा है। यह उसके जीवन से शिक्षा की स्थिति आज प्रत्येक मनुष्य के लिए लागू होती है। मनुष्य जब माता की कुक्षी से वाहर आता है तो किस हालत मे आता है ? उसकी मुट्ठी बन्द होती है। मुट्ठी वन्द क्या है,यह कुदरत की रचना है,लेकिन शिक्षा के दृष्टिकोण से यह समझना है कि मुट्ठी मे कुछ लेकर आया है, पूर्व जन्म मे पुण्यवानी अर्जित करके मुट्ठी वांध कर आया, और इस जन्म मे धीरे-धीरे इस पुण्यवानी को खर्च करके मानो मुट्ठी खोल कर हाथ फैलाकर जा रहा है अर्थात् जव मृत्यु का प्रसग आता है, मरने की घड़ी आती है तो खाली हाथ जाता है। यानी पूर्व जन्म की पुण्यवानी लाया था वह खर्च करके यहा जीवन से हाथ धोकर जा रहा है। आज किसके ऊपर मनुष्य अभिमान करता है। आजकल जो वड़े वडे किले दिख रहे है—उनको आज किस दृष्टि से देखा जा रहा है। उस समय जब कि आचार्य श्री आगरा पधारे थे, जगल निपटने की दृष्टि से लाल किले के पास से जा रहे थे उनके साथ मे जो आदमी मार्ग दर्शक था, कहने लगा आचार्य श्री, यह लाल किला कहलाता है। इसके तीन परकोटे हैं और दो खाइयां है। तो आचार्य श्री का चिन्तन मुखरित हो उठा। वे कहने लगे जिन्होने तीन परकोटे और दो खाइयां वनाई उस समय उन्होने यही सोचा होगा कि इन किलो के अन्दर मेरी आल-औलाद, मेरे पीछे की सन्तति वहुत सुरक्षित रहेगी, उनके लिए उस समय उन्होने मन-माने अन्याय और अत्याचार किये। अव आप देखिये कि किले मे कौन सुरक्षित रहा ? कहां उनकी आल-औलाद है ? सत्ता और सम्पत्ति सब कुछ मानने वाले वे स्वय दुनियां मे न रहे, उनकी सन्तान नही रही। यह किला आज किसके हाथ मे चला गया। आज उस किले का कोई महत्व नही है और आज के तो शस्त्र भी कुछ और

है। इस ग्रह को हटाने के लिए भारत की प्रधानमन्त्री इन्दिराजी कुछ ना·ा लगा रही हैं कि गरीवी हटाओ। लेकिन गरीवी हटाने के लिए नारो से काम चलने वाला नही है। इस गरीबी के कारण को समझ कर इसको दूर करने के लिए जव तक मानव जीवन का मूल्याकन नही होगा तब तक गरीवी का प्रश्न हल होना दु सार सा लग रहा हैं। इन्सान का जीवन क्या है, जिन्दगी क्या है, इसको समझे बिना गरीवी का प्रश्न हल नही होगा। इस प्रश्न को हल करने के लिए जव तक राजनैतिक नेताओ के मस्तिष्क मे, समाज के नेताओ के मस्तिष्क मे और समाज के वच्चे-बच्चे के मस्तिष्क मे यह विचार नही आयेगा कि समाज के धरातल पर रहने वाला प्रत्येक मानव अपने अपने जीवन का महत्व अकन करे और मैं भी उनके समान हूँ अत· उसके अनुकूल व्यवहार करू तब तक यह प्रश्न हल होने वाला नही है। आज की स्थिति तो यह बन रही है कि जहा कोई वडा आदमी सामने आया उसको ही महत्व दिया जाता है। बडा समझने का भी एक मापदण्ड बन गया है। या तो कोई अधिक पैसे वाला हुआ तो उसको महत्व देंगे, या फिर कोई ऊपरी पोषाकी सज्जा के साथ आ गया तो, भले ही उसका आचरण कैसा भी रहा हो लेकिन स्वच्छ सुन्दर पोषाक पहन कर सभा मे आकर बैठ गया तो कहेंगे पधारिए साहब ! इधर पधारिए। वह पीछे बैठेगा तो नही बैठने देगें, उसको आगे बैठायेंगे। पूछेंगें आप कहाँ से पधारे हैं। आगे बढकर उससे हाथ मिलायेंगे। किन्तु यदि उसकी जगह कोई सामान्य वेशभूषा वाला व्यक्ति सादी पोषाक मे आ जाता है तो उसकी ओर सम्भवत कम ध्यान देंगे और अगर पास मे बैठेगा तो उसको कोहनिया मार कर पीछे करने की को·शश करेंगे कि कहा आगे आ गया है।

एक प्रेरक आदर्श

बन्धुओ, मैं मालू जी की वात कह रहा था। मालूजी सभा मे

न हो और इस पाप को छिपा कर तथा दवाकर रखता रहू । ऊपर से केवल ऐसा वता देता है कि दुनिया मुझे भला आदमी समझती रहे । कदाचित् किसी सयोग से अपने जीवन से शुभ काम वन जाता है, मार्ग मे जाते हूए किसी गिरते हुए प्राणी को सहारा देकर वचा लेता है, तो वह मन मे फूला नही समाता है और सारी जगह वात कहता फिरता है कि मैंने ऐसा किया, और जिस व्यक्ति को सहारा दिया यदि वह व्यक्ति कभी कोई वात कहे तो वह उलट कर कहेगा कि मैंने तुमको मरते हुए को वचाया था । वह दुनिया भर में उसका ढिढोरा पीटेगा और इस छोटे से शुभ कर्तव्य से अपनी गदगी को नीचे दवायेगा । इस के विपरीत जो व्यक्ति सद्गुण रूपी शक्तियो को तिजोरी मे वन्द रखता है कूडे कर्कट को वाहर फेक देता है, तथा प्रभु के नाम का श्रवण करता है तो वह नाम उसके जीवन को पावन करने वाला वन जावेगा । यदि ऐसा नही किया तो प्रभु का नाम हजार हजार वार ले, लाखो-करोड़ो वार लें, वह प्रभु का नाम पवित्र पावन करने वाला नही वनेगा । इन पवित्र कडियो को जीवन के साथ जोडे और जीवन को सामने रखकर इसके स्वरूप को समझने की कोशिश करें तो यह सव सम्भव है ।

प्रभु महावीर ने ढाई हजार वर्ष पहले जो उद्घोषण किया वह यही था .

असखय जीविय मा पमायए ।
जरोवणीयस्स हु नत्थि ताण ॥

हे मानव ! तुम्हारा जीवन असस्कारित चल रहा है । प्रमाद मे क्यो पडे हो, जीवन को इधर उधर क्यो भटका रहे हो । आप विचार करिये असस्कारित जीवन क्या है हमारा प्रश्न क्या है ? जीवन के साथ सस्कारित और असस्कारित शब्द जुडे हुए हैं । असस्कारित जीवन की और सस्कारित जीवन की अनेक विद्वान् परिभाषा करते है, जीवन को तोलने की कोशिश

आचार्यश्री ने कहा कि मालूजी आप तो इस जीवन के अन्दर ही जीवन को सार्थक कर रहे हैं। आप पैसे के पीछे नही बह रहे है, आप सम्पत्ति का सदुपयोग करके जीवन की कीमत कर रहे हैं। इस प्रकार जब आचार्यश्री ने कहा तो मालूजी ने उत्तर दिया कि अन्नदाता, मैं क्या कर रहा हू, मैं क्या करने मे समर्थ हू मेरे पास तो कचरा बढ रहा है उसको साफ कर रहा हू। जितना कचरा कम हो जाय उतना ही अच्छा है। वे सम्पत्ति को क्या समझते थे, कचरा! जो सम्पत्ति को कचरा समझ कर चलता है वह कभी भी जीवन के साथ खिलवाड नही करेगा। इसलिए ज्ञानीजन कहते हैं कि अरे भाई कुछ धर्म की स्थिति को भी ध्यान मे रखो। मालूजी जैसे व्यक्ति समाज के अन्दर आदर्श रूप मे होते हैं जिन्होने जीवन को पैसे से ऊँचा समझा है, जीवन को सत्ता, सम्पत्ति और अधिकारो से ऊपर समझा है। वे जीवन की वास्तविक परिभाषा को अच्छो तरह समझ चुके हैं।

विवेक से काम लो

यहाँ एक प्रसग याद आ गया। एक श्रावक जो भक्त था, भक्त का मतलब यह है कि वह अपने आप में निष्ठा रखता था, जीवन की कीमत को समझता था और ब्लैक मार्केट आदि के कार्य न करके सीधा व्यवसाय करता था अत अर्थ की दृष्टि से वह बहुत साधारण था। शहर के बाहर एक बगीचे मे झोपडी बनाकर रहता था। सयोग-वश उसकी पत्नी का देहान्त हो गया वह अपने पीछे एक पुत्री छोड गई। वह पुत्री जब बडी होने लगी तो उसे ही सस्कार दिये, और जीवन की कला सिखाई गई। उसने पुत्री से कहा कि हमारा जीवन एक महत्वपूर्ण जीवन है। यह जीवन ससार के विषय भोग के लिए नही है, पशु-पक्षियो की तरह से बिताने के लिए नही है। हमे साधना करते हुए चलते रहना है आदि। किन्तु समय की स्थिति से

मे नही जा सकता पञ्चेन्द्रिय से आप क्या समझते हैं ? पाच इन्द्रियां ये हैं– कान, आख, नाक, मुँह और शरीर। यदि हम कहे कि पाँच इन्द्रियो वाला ही जीव है तो जिसके चार इन्द्रिया हैं, तीन इन्द्रिया हैं क्या वह जीव नहीं हैं ? दो इन्द्रिया हैं तो क्या वह जीव नहीं ? एक इन्द्रिय है तो क्या वह जीव नही ? अतः जीव मात्र का पंचेन्द्रीयत्व लक्षण वताना यह जिस प्रकार दोषपूर्ण है उसी प्रकार जीवन के विषय मे एक विद्वान ने कहा है—"दोष विवर्जितं यद् तद् जीवनम्" दोप से रहित है वह जीवन है। यह भी दोषपूर्ण लक्षण है।

मैं यहाँ आपको वतला रहा हू कि जीवन का सही लक्षण क्या है। इस प्रश्न के उत्तर मे जव यह कहा जाय—"दोप विवर्जितं यद् तज् जीवनम्" इस पर यदि उपर्युक्त तरीके से विचार करें तो यह लक्षण कहा तक शुद्ध है ? इसकी परिभापा के साथ आपको थोडा सा वारीकी से चिन्तन करा रहा हू। यह लक्षण शुद्ध नही है। 'दोपविवर्जितं यत् तद् जीवनम्'—दोष रहित जीवन यह लक्षण जा सकता है। पर साथ ही जीवन रहित तत्व मे भी यह चला जाता है। इस परिभापा के अनुसार यदि दोप रहित परमाणु हो तो वह जीवन कहला सकता है।

शास्त्रीय दृष्टि से धर्मास्तिकाय दोप रहित है तो उसको भी जीवन कहना पडेगा पर धर्मास्तिकाय मे जीवन कहा ? तो यहा पर घोटाला हो जायेगा। इसलिये जीवन की उपरोक्त परिभापा शुद्ध नही कही जा सकती। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय व आकाशास्तिकाय भी अपने आपमें दोप रहित है। जीवन की उपर्युक्त परिभापा के अनुसार इन्हे भी जीवन समझ लिया जायगा—पर वे तो जड हैं। अत यह लक्षण अतिव्याप्ति दोपयुक्त वन जाता हैं। इसमे जीवन के पूरे लक्षण नही आ रहे हैं। जीवन के शुद्ध लक्षण को पहिचानने के लिये मैं आपके सामने यह चीज रख रहा हूं—शुद्ध लक्षण को जानने के लिए आपको अपना जीवन सस्कारित करना है,

चरित्र को ऊँचा रखना और मनुष्य को मनुष्य समझकर आत्मकल्याण का रास्ता प्रस्तुत करना। जब इस शिक्षा को लेकर वह करोडपति के घर मे पहुची तो पैसे का अभिमान उसके मस्तिष्क मे नही आया। वह पैसे की दृष्टि से इन्सान की कीमत नही करती—वह सारे जीवन की दृष्टि से उनका मूल्याकन करने लगी, और आनन्द के साथ सेवा करते करते ऐसा कुछ वर्ताव किया कि उस घर मे जितने भी लोग थे उनको अपने वश मे कर लिया। अडोस-पड़ौस के अन्दर रहने वाले जितने प्राणी थे सब के सब आकर्षित हो गये। धीरे-धीरे उसकी कीर्ति फैलने लगी कि गरीब घराने की कन्या करोडपति के घर मे पहुचकर किस प्रकार से मनुष्य जीवन का अकन करती है। तारीफ के पुल इधर-उधर से आने लगे। सास-सुसर अत्यंत प्रसन्न थे। गरीबी और अमीरी का भेद मिटाते हुए उसने अपने जीवन के सौरभ से आस-पास के अधिकाश व्यक्तियो को आकर्षित कर लिया। इन सब बातो को लेकर एक रोज उसकी सासू जी प्रसन्न होकर उससे कहने लगी कि पुत्री ये चाबिया अब तुम सम्हालो। उस वक्त उस पुत्र वधू ने कहा—सासूजीराज,चाविया तो आपके पास ही रखें। मुझे तो इन चाबियो की आवश्यकता नही, जीवन की चाविया चाहिए। आजकल की पुत्रवधुए यह बात बोलेगी कि सासूजी, अब आपका बुढापा हो गया है अब तिजोरियो की चाबी न रखें। खोलकर उसको सोप देंगी तो ठीक और नही सोपेंगी तो लडाई झगड़ा होगा। आज अधिकाश घरो की यही स्थिति है। सास-बहू लड रहे है, बाप-बेटे लड़ रहे हैं, भाई भाई लड़ रहे हैं। वही सासू तिजोरियो की चाविया सोपने लगी तो उसने नही ली। सासू जी ने आग्रह किया कि मैं वृद्ध हो गई हू और आगे के जीवन के लिए कुछ करू मुझे तो तुम ऐसी शिक्षा दो कि मैं जीवन की कीमत करूं और जीवन क्या है इसको समझने का प्रयास करूं। यह सासू जी बोलने लगी। उसने कहा कि तिजोरी की चाविया तो आप मुझे सौंप रही हैं लेकिन मेरी

मिली है, शान्ति बढी है ? नही, अशान्ति बढी है। बुद्धिजीवी वर्ग का जिस तरह से विकास हुआ है उसमे आप बिलकुल सही तौर पर, अपने अन्तर पर हाथ रख कर पूछिये कि शान्ति मिली है कि अशाति ? अशान्ति। बडे से बडे जौहरी से पूछिये ? आपने जवाहरात के अन्दर तरक्की की है लेकिन क्या उससे जीवन के अन्दर शान्ति मिली है ? यदि उससे जीवन के अन्दर शान्ति का सस्कार नही है तो समझना चाहिये कि वह जीवन वस्तुतः सस्कारित नही हो पाया है। आज जो सस्कार हैं वे कुछ और ही हैं। वास्तविक जीवन के संस्कार कुछ और ही हैं।

संस्कारों का चमत्कार

जिस जीवन मे छोटी चिनगारी-सा सस्कार आ जाता है वह जीवन कैसा चमत्कार दिखा सकता है, इसके लिये थोडा रूपक कल अधूरा छोड गया था। एक तरफ ८० वर्ष की वुढिया जिसने वाल वच्चो का पोषण किया, पोते पड पोते देखे और उनसे उसका सारा घर भर गया। कितना विकास कर लिया। क्या उसने जीवन का सस्कार किया है ? जीवन मे यह सब कुछ किया,घर को परिवार से कितना भरा पर उस बुढिया को शान्ति कितनी मिली ? एक तरफ एक तरुणी जो अभी नव विवाहिता है, विवाह करके ससुराल आई है। जब उसके सामने यह जटिल प्रश्न आया, उस प्रश्न को लेकर वह प्रसग आती है और देखती है सासुजी अशान्ति के झूले मे झूल रही हैं वे सोचती रही वह बुढिया उसके साथ अपशब्दो का प्रयोग करेगी, अमगलकारी शब्दो का प्रयोग करेगी आदि। तो वह नवविवाहिता कहती है कि सासुजी, आज आप यह क्या सोच रही हैं, कि क्या आपके परिवार के लिए अमगलकारी शब्दो का प्रयोग कर देने से वह परिवार उनमें परिणित हो जायेगा। यह सोचना आपका गलत है। यदि अमगल शब्दो से सीधा किसी के ऊपर आक्रमण होता हो तो अमगल

क्योकि पैसा हराम सिखाता है। इसलिए पैसा कौडी तो नही दिया, अत. साधू ने वह अन्न ग्रहण कर लिया। उसकी पोशाक तो साधुकी थी किन्तु उसके मन और नेत्र चचल थे, तदनुसार वह उस हवेली को देखने लगा। वह जब इधर-उधर देख रहा था तो उस पुत्रवधू से रहा नही गया और उस पुत्रवधू ने स्पष्ट रूप से साधू को सकेत मे कहा कि साधूजी तुम्हारा एक गया, तो साधू भी थोडा-सा बुद्धिमान था, उसने देखा कि मुझे सकेत से शिक्षा दी गई है तो उसने भी वापिस उत्तर दिया कि तुम्हारे दो ही गए। तो उस पुत्रवधू ने पुन उत्तर दिया कि तुम्हारे तो तीनो ही चले गए। आपस मे सकेतो मे ही उनकी वातें हुई। सासू जी कमरे मे बैठी हुई थी। पुत्रवधू को दान देते हुए देख लिया था आगवबूला हो रही थी कि मैंने पहले ही बहू को कह दिया था, कि दान नही देना और आज इसने इस साधूडे को दान दे दिया और दान देने के साथ ही साथ सकेत मे गुप्त बातें भी कर रही है, हाय-हाय यह तो बहुत वडा अकाज हो गया। मैंने पतिदेव को पहले ही कहा था कि ऐसी गरीव घराने की छोकरी नही लाना चाहिए किन्तु पतिदेव नही माने और ऐसी छोकरी को ले आए। सेठानी का मन और मस्तिष्क सारा का सारा दूसरे रूप मे घूम गया। वह सोचने लगी कि अब क्या करना चाहिए, ऐसी पुत्रवधु के विना तो मेरा पुत्र बिना शादी के ही रहता तो कोई वात नही थी। ऐसी वहू को मैं कैसे रख सकती हूँ इस प्रकार की अनेक तरह की कल्पनाए करती है किन्तु यह नही सोच पाती है कि इसका निर्णय कर लूं, कि उसका सकेत क्या था। साधू जी ने सकेत से क्या कहा और वहू ने क्या सकेत दिया, इसमे क्या भेद है, सकेत का वस्तुत क्या अर्थ है, विना इसका निर्णय किए ही उसने मन मे निर्णय कर लिया और उसके मन मे पुत्रवधु के वारे मे भावना दूसरे रूप मे वन गई और मन मे सोच लिया कि किसी प्रकार से इसको समाप्त करना चाहिए। लेकिन समाप्त करने से पहले सेठ

निष्क्रय वैठ जाऊँगी तो मेरे मन मे व्यर्थ का पाप का कचरा इकट्ठा होगा इसलिये कुछ न कुछ कार्य हाथ मे लेकर जाना चाहिये। इस दृष्टि से हाथ का चर्खा, कातने की पूनी, सब साधन लेकर पहुची। जब बुढ़िया के द्वार पर जाकर यह कन्या खडी हुई, तो कुछ विलम्ब हो गया था। इस बिलम्ब की स्थिति से बुढिया तमतमा उठी और बच्ची को देखकर पहले ही स्वर मे उस बुढिया ने कहा, अरी राड इतनी देर से आयी। आप सोचिये नवीन पुत्र वधू को कोई राड शब्द से पुकार ले। मैं समझता हूँ कि बन्दूक की गोली का असर जितना नही होता है उतना उसका असर होता है। परन्तु जिसके मन मे सुसस्कार है उसके मन को इस प्रकार के शब्द भेदते नही हैं किन्तु सुसस्कार उसके सुरक्षक बन जाते है। एक भोडल पत्थर होता है जिसके पट के पट उतरते चले जाते हैं। उस पर बन्दूक की गोली का असर नही होता है। क्योकि वह स्वच्छ भी होता है और उसके पट भी कुछ कठोर होते हे। जिस जीवन मे सस्कारो के पट भोडल के समान हो गये हैं उसके सामने 'राड' जैसे शब्द भी आ जाय जो बन्दूक की गोली के तुल्य है तो भी उसके जीवन पर उनका कोई असर नही होता है। बुढिया को वह नव युवती मुस्करा कर उत्तर देती है, सासु जी राज! आपका परिचय प्राप्त करने में थोडा बिलम्ब हो गया। मुझे क्षमा करिये, अब मैं आपके सामने उपस्थित हो गयी हूँ।" ऐसे कोमल शब्दो से उसने उसको सम्बोधन किया और चर्खा लेकर वैठ गयी। उधर उस बुढिया के मुख मे गालियो की वर्षा होने लग गयी। लेकिन वह बहन मस्ती मे अपना कार्य कर रही है, और अपने मन मे एक भी शब्द को स्थान नहीं दे रही है। सोच रही है कि किसी की ऐसी आदत होगी। वह अपना कार्य करती रही। बुढिया बहुत देर तक बोलती रही। बीच में बोलने वाला मिल जाता है तो उसको अधिक समय

अवश्य रहा है, गति उसकी रुकती नही है, प्रयत्न जरूर, चालू है लेकिन वह विधि के साथ है या अविधि के साथ है यह सोचना हैं।

अगर विधिपूर्वक मनुष्य के सारे प्रयत्न चल रहे हैं, विधि के साथ वह पुरुषार्थ कर रहा है, विधि के साथ ही जीवन की तमाम क्रियाएँ कर रहा हैं, तो उसके जीवन की समग्र शक्तियाँ विकसित हो सकती हैं।

जब विधि के अन्दर भी वह शक्ति है तो जिस व्यक्ति के जीवन मे सुविधि आ जाए उसका तो कहना ही क्या ? उसका जीवन परमात्मा शक्ति के रूप मे परिलक्षित हो इसमे कोई भी आश्चर्य नही।

अब हमे यह सोचना है कि इस साधनाकाल मे अपने जीवन को परिमार्जित करने के लिये सुविधिनाथ भगवान की प्रार्थना के प्रसग मे हम किस तरह से तत्पर हो सकते है ? किस तरह से हम अपने जीवन को सुसस्कारित कर सकते हैं जिसका कि सकेत आपको कुछ समय से मिल रहा है। और यह सकेत अपुट्ठवागरणा-उत्तराध्ययन सूत्र चतुर्थ अध्ययन की जो प्रथम गाथा है उसकी व्याख्या के रूप मे कुछ दिनो से मैं आपके सम्मुख कर रहा हू। प्रभु की इन उद्घोषणाओ को सुनने और समझने का प्रयास आप कर रहे हैं।

भगवान ने फरमाया कि **"असंखयं जीविय मा पमायए"** मानव, तुम्हारा जीवन असस्कृत है, तुम प्रमाद मत करो। वीतराग देव ने अपने केवलज्ञान के उस दिव्य सूर्य के प्रकाश मे मनुष्य का जो जीवन देखा है उसके अनुरूप ही उन्होने मानव को सम्बोधित करते हुए उक्त वचन फरमाये हैं।

अन्तर में झांको

यह सम्बोधन समुच्चय है चार तीर्थ के लिए है इसमे साधु, साध्वी भी आ जाते है और तो क्या महान—प्रतिभा सम्पन्न

इन्कार करोगे कि भाई मुझे नही चाहिये। जैसे उस व्यापारी का पैसा व्यापार समझ कर आगे बढ जाते हैं उसी तरह मानव समाज का हाट लगा हुआ है और प्रत्येक आदमी कई चीजें लेकर बैठा है। असस्कारित जीवन है तो उसके पास उस तरह की चीजें है वह उनको लेकर बैठा है। कोई आदमी उधर से गुजरता है तो वह उनको वही देता है जो उसके पास है किन्तु जो सस्कारित है वह अपने मस्तिष्क को नियन्त्रित रखता है और यह सोच लेता है कि इस भाई के पास इन्ही चीजों का व्यापार है अत यही वस्तु देगा। मुझे इनकी आवश्यकता नही है। मैं न लूँ वह असस्कृत व्यक्ति हजार गालियाँ दे तो क्या हजार अपमान सूचक शब्द बोलता है तो क्या। वह व्यक्ति अपने मस्ति क को नियन्त्रण मे रखता है और किसी प्रकार की विकृति, अपने मस्तिष्क मे प्रवेश नही करने देता है। मैं समझता हूँ कि आपके मस्तिष्क मे उसी प्रकार भी विकृति प्रवेश नही करेगी। लेकिन ये तत्त्व अपनाने से आ सकते हैं। विना अपनाये नही आ सकते।

हा तो, वह कन्या यह सोचे कि मरे तो मरने दो, अच्छा हुआ। उठाओ मत सहज ही मर रही है, मुझे ऐसी गालिया दी। किन्तु यह असस्कृत मन को बात है। जो भाई सुसस्कारित जीवन वाला है वह यह सोचेगा कि यह भाई मूर्छा म पड़ा है और मै सचेप्ट हूं। यदि आप जीवन को समझना चाहते हैं तो सबमे पहले आपका कर्त्तव्य है कि दुश्मन के प्रति भी शान्ति की कामना करें और उसको उठावें।

बुढिया गाली बकती-बकती मूर्छा खाकर गिर पडी। यह देख कर वह तरुणी उठी। उसके मन में तो अपार करुणा भरी थी उसने चर्खे को एक तरफ रखा और बूढी माजी को गोदी में उठाया, अपने घुटने पर उसके मस्तिष्क को रखा, पानी का छीटा दिया और पवन करके उनको सचेप्ट की। दिन भर की थकी हुई

है। तलवार की धार पर प्रत्येक मनुष्य नही चल सकता, लेकिन कदाचित् बाजीगर अपना प्रयत्न करके कुछ चल सकने की कोशिश करे, किन्तु उस तपश्चर्या की धार पर चलना उससे भी मुश्किल है। ठीक वैसे ही परमात्मा की विधि पर चलना, भगवान के मार्ग पर चलना और वह भी संयम के साथ, तलवार की धार से भी अधिक कठिन है। इस प्रकार की दुष्कर वृत्तियो मे सुविधि के साथ गमन करना तथा अपने मे अहकारी वृत्ति का प्रवेश नही होने देना ही साधक की साधना है, वही सस्कारित जोवन है।

तप केवल आत्मशुद्धि के लिए

शील का अर्थ स्वभाव से भी है। जहा स्वभाव का प्रसग आता है, उसे आजकल की भाषा मे हम नेचर किंवा प्रकृति कहते हैं अपना स्वभाव अन्य व्यक्तियो के लिये कैसा बने इस विषय मे आज इन्सान को अपने जीवन को मोड़ देने की आवश्यकता है। उसका स्वभाव सुन्दरतम बने, स्नेह मय बने, वह मधुर बने, वह रसयुक्त बने, सबके दिलो को खीचने वाला बने—ऐसा स्वभाव जिसका बनता है वह भी शील की स्थिति मे आता है। दानशील और तप—इन तीनो मे से दो का विवेचन आपके सामने आया। तप करने की दृष्टि से तपश्चर्या जहां चतुर्मास लगता है वहा पर चालू होती है, लेकिन इस विषय मे जयपुर का नाम अधिक श्रवण करने को मिलता है। इन वर्षों मे जयपुर के अन्दर शायद ही कोई चातुर्मास ऐसा बीता हो जिसमे मासखमण नहीं हुए हो जैसा कि अभी श्रवण करने को कुछ मिल रहा है, आज ही कोई मासखमण नही हो रहा है बल्कि मासखमण की तपश्चर्या कुछ वर्षों से सुन रहे हैं, कभी ज्यादा हो गयी कभी कम हो गयी यह अलग बात है। तो तप की स्थिति भी चलती। लूणावत जी की माताजी ने शायद शेष काल में २६ दिन की तपश्चर्या कर ली। तो इस प्रकार ––चर्या

यह वह हमारे गाव मे एक देवी के रूप मे आई है। यही स्वर चारो ओर से आने लगा देखिये उस कन्या ने अपने जीवन को पूरी तरह से नही थोड़ा सा ही सस्कारित किया फिर भी दुनिया वालों ने उसको अपना पूज्य मान लिया।

मानव यदि अपने जीवन मे थोडा भी सस्कार को अपना ले और तदनुरूप प्रवृत्ति करता हुआ पदम प्रभु की प्रार्थना मे लीन हो जाए तो जीवन की वास्तविक शान्ति उससे दूर नही रहेगी आवश्यकता है जीवन के सस्कारित स्वरूप को समझकर चलने की।

लाल भवन,
२२-७-७२

●●

जैसे सस्कार किया हुआ अन्न मधुर व सुपाच्य होता है, वैसे ही सस्कार सपन्न जीवन जगत मे सबके लिए स्पृहणीय होता है।

●

प्रमाद और कषाय का त्याग कर अन्त करण को ऐसा सुसस्कारी बनाओ, कि उसमे प्रभु की शिक्षा रूप सिहनी का दूध ठहर सके।

—आचार्य श्री जवाहरलाल जी म०

●●

थोड़ा है, सूर्यास्त से पहले भोजन कर लेना है। मैं जैनी हूं न।

देखिये—एक तो वह जैनी था और एक मैं जैनकुल में जन्म लेने वाला था, अजैनी जैसा था, क्योकि उन गाँवो मे इस तरह के सस्कारो की प्राप्ति थी नही। क्या कर्तव्य है जैनियो का इसकी भी जानकारी नही थी। मैंने उसे पूछा—रात मे भोजन क्यो नही करते ? उसने उत्तर दिया "मेरी मां ने कहा है कि रात्रि भोजन करूँगा तो मेरे सीगडे उग जावेंगे।"

बच्चे को माँ ने इसी तरह से समझा रखा था। छोटे बच्चे भी इतना ध्यान रखते हैं इस समाज मे, सूर्यास्त मे पहले ही भोजन करने के लिए दौड कर जाते हैं, और एक आप है इतने वृद्ध और नौजवान होकर भी इसका विचार इने-गिने ही रखते होगे !

आप मनुष्य की बात छोड़िये। जो अनजान हैं, जिनको हम अपने से कही बहुत कम ज्ञानवाला मानते हैं, उन पक्षियो को ही लीजिये। चिडिया हैं, कबूतर हैं ये रात मे चुग्गा नही चुगते।

तो यह रात्रि भोजन नही करने का प्रसंग आप लोगो के सामने उपस्थित कर रहा हू जो और किसी छोटे मोटे ठिकाने मे नही रहते, गांवो मे नही रहते, बल्कि राजस्थान की राजधानी मे रहते हैं, जयपुर जैसे नगर मे रहते हैं। जहाँ मेरा जन्म हुआ वहाँ के गांवो के लोग भले ही न समझे, पर राजधानी के नागरिक तो समझते है और उसमे भी जयपुर के जौहरी घरानो के जैनी, जवाहरात का परीक्षण करने वाले। फिर क्या आपने जीवन का परीक्षण नही किया ? यह कैसे सम्भव हो सकता है ?

तो मैं यह सोच रहा हू कि राजधानी के भाई और बहन बड़े समझदार और तेजस्वी हैं। धर्म ध्यान और चिन्तन मनन मे काफी रुचि रखने वाले हैं। यहां का युवावर्ग भी बहुत जागृत और लगनशील है। इन सब बातो को देखते हुए इस प्रसग पर क्या मैं यह मान कर चलू कि कम से कम आप सब भाई बहन अभ्यास

तब फिर सेठ ने कहा—कि देखो भाई मैंने अपनी समझ के अनुसार सोच समझ कर तुम्हारा विवाह किया। इस कन्या को मैंने सुलक्षणा और देवी के रूप मे देखा, सुशील समझा, पवित्र आचार वाली समझा, तब तो तुम्हारी माता से विरोध मोल लेकर भी और पैसे का लालच भी छोडकर तुम्हारे साथ इसका विवाह किया। और मुझे आज दिन से पहले तक किसी भी प्रकार का विचार नही था, लेकिन जब कि तुम्हारी माता कह रही है कि मैंने प्रत्यक्ष देखा और प्रत्यक्ष कान से सुना, कि इसने साधु को पहले तो माल वहराया और साथ ही साथ ऐसे साकेतिक शब्दो मे वार्तालाप कर रही थी इस वार्तालाप की स्थिति को जब सुना तो मेरा मन भी साक्षी देने लगा। कि हो सकता है यह स्त्री कुछ इस तरह की हो अन्दर से कुछ और हो और ऊपर से कुछ और दिखती हो। इसलिये जो तुम्हारी माता कह रही है उसे करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

बन्धुओ, बहिनो पर लान्छन लगाना सहज है लेकिन बहनो के गुणो को लेकर जीवन को विकास करना दुश्वार है। इस बहन के ऊपर जो कुछ लाछन की स्थिति बन रही है। यह सिर्फ भ्रान्ति के कारण बन रही है। इस बहन के जीवन मे कुछ भी मलिनता के भाव नही हैं फिर भी सासूजी का मस्तिष्क दान देने से भटक गया उन्होंने इन्कारी कर रखी थी कि तू किसी को दान मत देना। पर वहू अपने जीवन के सस्कारो के कारण, दानशील तप और भावना के महत्व को समझती थी इसलिये उसने साधु को सात्विक दान दे दिया। इसके कारण उसकी सासूजी गरम हो गई और उस गरमी से तनतना कर वहू और साधूजी के बीच हुए साकेतिक शब्दो को वह पकड लेती है। इसके मन मे विचार गहराई से घर कर लेते है कि इसने साधु के साथ गुप्त बात की इस गुप्त बात में क्या अर्थ छिपा है?

वीतराग देव के चरणो मे कुछ न कुछ निवेदन कर ही दिया करता हू फिर चाहे वह विनयचन्दजी की चौवीसी मे से हो, आनन्दघन जी की चौवीसी मे से हो या देवीचन्दजी अथवा अन्य किसी भी आचार्य एव संत की चौवीसी मे से हो। सन्त कवियो ने प्रभु के प्रति अपनी प्रगाढ़ भक्ति भावना को नाना रूपो मे नाना प्रकार से व्यक्त किया है।

आज की प्रार्थना के अन्त मे भगवान् सुपार्श्वनाथ के चरणो मे सन्त कवि ने कुछ निवेदन किया है। क्या निवेदन किया है ? निवेदन किया है कि भगवन् ! आप मेरी आशाओ को पूर्ति करें। आशा ? प्राणी मात्र के लिये आशा एक सम्बल है जिसके सहारे वे अपने अनेकानेक जीवन गुजार देते है। पर सामान्य प्राणी की आशा मे और सन्त कवियो की आशा मे अन्तर है। उसी अन्तर को समझना है।

जीवन में आशा का स्थान

कभी कभी कुछ तत्वज्ञ बोल उठते हैं कि आशा का तो परित्याग करना चाहिये। आशाओ का त्याग किये बिना तो हम भगवान को प्राप्त नही कर सकते, मोक्ष सुख प्राप्त नही कर सकते, यहा तक कि आशा का त्याग किये बगैर हम मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर ही अग्रसर नही हो सकते। मैं निवेदन कर दू कि यह सही है कि आशाओं को अन्त में छोड़ना ही होगा, पर अगर तत्वज्ञो का यह कथन सर्वथा एकागी रूप मे हो तो सही नही है। अगर इस कथन को अपेक्षादृष्टि से लिया जाय तो यह कथन सही कहा जा सकता है।

प्रभु प्राप्ति के लिये आशा का त्याग करना अनिवार्य है, आवश्यक है। पर साथ ही अपेक्षा दृष्टि से आशा का रहना भी आवश्यक है, अनिवार्य है। आप कहेगे यह कैसे ? आप भ्रम मे पड सकते हैं। पर ऐसा कुछ नहीं है। मैं इसे थोडा स्पष्ट कर देता हू।

भाई ! देखिये हमनें पचायत करके आपको जीमनवार करने की दृष्टि से सब कुछ तैयारी करने के लिए कहा और तुमने वैसी तैयारी भी की लेकिन वात यह है कि हमने लापसी मे जहर डालने के लिए नही कहा और आपने लापसी मे जहर डाला है। वह व्यक्ति आवाक् रह गया और कहने लगा कि आप क्या कह रहे हैं, मै स्वप्न मे भी नही जानता कि लापसी मे जहर डाला है। उसमे कतई जहर नही है और जैसा आप पचो ने कहा वैसा ही सामान डाला है उसके अतिरिक्त कुछ भी नही है। तो इस पर सबकी जुवान खुल गयी और कहा कि अच्छा तुमने जहर नही डलवाया तो ऐसा करो कि आप पहले जीमो ! और तुमको घण्टे दो घण्टे तक कुछ नही होगा तो हम सारे गाव वाले जीम लेंगे। वह जीमनवार करने वाला व्यक्ति सोचने लगा कि मैने तो जहर नही डलवाया लेकिन कौन जाने बाबा नौकर चाकरो ने जहर डाल दिया होगा या किसी दुश्मन नें डाल दिया होगा। यदि पहले पहल मै जीम लूँगा तो मर जाऊँगा। उसने कहा कि मै तो पहले नही जीमूँगा। तो पचो ने देखा यह वात और भी मजबूत हो गयी कि लापसी मे जहर है तभी तो यह नही जीमता। उसने कहा कि देखो साहब मैं सच्ची बात बतला देता हू कि मैने तो जहर नही डलवाया लेकिन कदाचित् कोई दुश्मन आ गया हो या रसोइये के मन मे खरावी आ गयी हो और उन्होनें जहर डाल दिया हो तो उनको पूछने से पता लग जायेगा। फिर उस जीमनवार करने वाले व्यक्ति ने उन रसोइयो से पूछा कि इस लापसी मे जहर है ? तो उन्होने कहा कि नही। हम सौगन्द खाकर कहते है कि इसमें जहर नही है। तो पचो नें कहा कि यदि ऐसी वात है तो पहले तुम जीम लो और घण्टे दो घण्टे तुम्हें कुछ नही हुआ और तुम जिन्दे रहोगे तो हम जीम लेंगे। इतनी वात सुनकर रसोइये सोचने लगे कि कौन जाने क्या हुआ हो, कही हम इधर उधर रह गये हो और किसी ने दुश्मनी से जहर डाल दिया हो, हम खा लेंगे तो मर जायेंगे इसलिए पहले

की आशाएँ जड़ मूल से नष्ट हो गई तो उस मनुष्य का जीवन तो समाप्त प्राय: है। कवियो ने कहा है आशा सर्वोत्तमा ज्योति. आशा सर्वोत्तम प्रकाश है। हिन्दी में भी कहावत है—

जब तक श्वासा तब तक आशा—इस कथन को भी आप अपेक्षा दृष्टि से हल करिये। चिन्तको के बताये मार्ग का अनुसरण करते हुए इस प्रश्न का हल खोजिये।

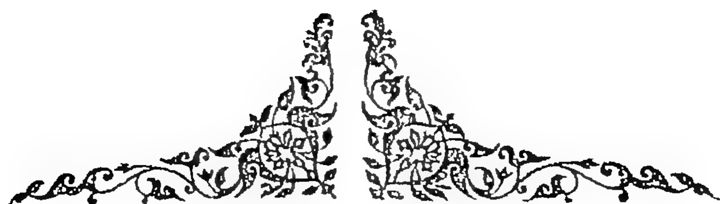
आशा के सहारे बच्चे बडे होते हैं, आशा ही के सहारे तरुण अपनी तरुणाई मे जो कुछ सोचता है वह कर गुजरता है। आशा के सहारे वृद्ध अपने जीवन के शेष काल का स्वप्न देखता है।

यह तो स्पष्ट है कि आशा आशा में अन्तर है। एक आशा को हम आध्यत्मिक प्रगति का सूचक कह सकते हैं तो दूसरी आशा को सासारिक, पौद्गलिक जीवन की लम्बी परम्परा का कारण कह सकते हैं। तो कवि की आशा क्या है ? वह पुकार उठता है—

श्री जिनराज सुपास पूरो आस हमारी।
धर्म काम धन मोक्ष इत्यादिक मन वाछित सुख पूरी।

बन्धुओ, मानव चाहे मुह से भले ही कह दे कि आशा का सर्वथा त्याग करना है। लेकिन अनुभूति के साथ और प्रत्यक्ष आन्तरिक शक्ति के साथ वह नही कह सकता। मस्तिष्क के सस्कारो से यदि उसका जीवन सस्कारित है तो उन सस्कारो के सहारे तो वह कह सकता है, लेकिन जीवन के सस्कारो से सस्कारित होकर और "कि जीवन" इस प्रश्न का समाधान जिसने पा लिया है वह मानव वस्तु स्थिति को ओझल नही करेगा। वह सिर्फ हवाई महल नही बनायेगा, वह काल्पनिक आकाश में उड़ान नही करेगा वरन् संस्कारित जीवन के साथ जमीन पर भी चलना चाहेगा।

जीवन के वर्तमान का जो शाश्वत प्रश्न है, जीवन की वर्तमान स्थिति की जो ज्वलन्त समस्याए है, इन सबको यथार्थवाद के



सौम्य-रश्मि शशि से परम शीतल

नवनीत से कोमल

चारित्र-चूडामणि

महामहिम आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

को

चरण कमलो मे

शत-शत अभिवदन ।

केसरीचंद माणकचंद सेठिया

नापूजी का कटला, बीकानेर

को समझना आवश्यक है। अर्थ और काम का पिण्ड जीवन नही है। फिर इससे ऊपर के दूसरे शब्दो में कहू तो जीवन का अर्थ प्राण है लेकिन उस प्राण को हम कब समझ पायेंगे ? तब, जबकि हम वस्तु स्थिति का ज्ञान करेंगे, उसका चिन्तन करेंगे-न आकाश मे उडेंगे, न आदर्शवाद की कोरी बातें करेंगे। हम आध्यात्मिक जीवन की पृष्ठभूमि मे चिन्तन करेगे तब जाकर हमारे जीवन की वह संस्कारित अवस्था आयेगी तो आप आशाओ की स्थिति के साथ चिन्तन कर रहे हैं। आज काम और अर्थ की आशाये लगी हुई हैं और इसके एकान्तिक स्वरूप मे मानव वह रहा है। वास्तविक सस्कारित कहलाने वाला प्राणी भी इस अर्थ और काम को सर्वथा तिरष्कृत नही कर सकता। यथास्थान किसी न किसी रूप मे उसकी यथार्थता भी समझता है। वह चाहे हेय हो, ज्ञेय हो, अथवा उपादेय हो उसे ठीक रूप मे समझता है।

आज का विचारशील मानस कुछ ऐसा बन चुका है कि कोई कोई तो अर्थ और काम को सर्वथा तिरस्कृत करता है और उस आध्यात्मिक दृष्टि से चरम छोर को ही वर्तमान में प्राण की सज्ञा देता है, लेकिन वर्तमान जीवन किस धरातल पर है। इसे वह भूल जाते हैं। यदि उसकी दृष्टि एकान्तिक बन जाती है तो वह भी दूसरे शब्दो मे असस्कारित जीवन कहा जा सकता है। वह वीतराग दृष्टि मे सस्कारित जीवन नही है। सस्कारित जीवन का मापदण्ड देखें तो वस्तु'स्थिति का यथार्थ रूप आ सकता है, और वही जीवन की वास्तविक आशाओ की ओर उन्मुख होगा। इस बात का सकेत प्रार्थना की कड़ियो के अन्दर थोड़ा दिया गया है। इसमें अर्थ और काम को भी लिया है लेकिन स्वतन्त्र और स्वच्छन्दता के रूप मे नहीं। उसको नियन्त्रित अवस्था मे लिया है इसलिए कविता मे सकेत है, भगवान् आप मेरी आशा की पूर्ति करो, लेकिन मेरी आशा क्या है ? जो दुनियाँ की काम और अर्थ

शीतलनाथ के स्वरूप को समझने की कोशिश करें। कवि ने प्रभु के स्वरूप का वर्णन करते हुए उपमा दी है कि—

शीतल चन्दन नी परे जपता निश दिन जाप।
विषय कषाय थी ऊपनी मेटो भव दु ख ताप ॥

भगवन् ! आप चन्दन के समान शीतल हैं शीतलता प्रदान करें, अधिकाशत आज के मानव का हृदय विषय और कषाय की आग से जल रहा है। एक भी प्राणी ऐसा दृष्टिगत नही होता, जो सासारिक अवस्था मे रहते हुए विषय और कषाय की ज्वाला मे न झुलस रहा हो। अधिकाश प्राणियो की स्थिति यह है कि वे मनुष्य रूप मे रहते हुए भी विषय और कषाय की आग से सतप्त हो रहे हैं। उस गर्मी को शात करने के लिए तदनुरूप किसी शीतल पदार्थ की आवश्यकता है।

बाहर से भीतर की ओर

जिस प्रकार शरीर मे जब गर्मी लगने लगती है, और कुछ फु सिया भी निकल आती हैं उस समय चन्दन का लेप किया जाता है। नमिराज ऋषि के वर्णन को आपने सुना होगा। उनके शरीर मे दाह ज्वर की व्याधि हो गई। वे उस दाह ज्वर से जलने लगे। हाय ! हाय !! करने लगे। परिवार के सदस्यो मे अशाति का वातावरण बन गया क्योकि सब सोच रहे थे, ये हमारे स्वामी हैं, जो हम सबका सरक्षण करने वाले हैं, भरण पोषण करने वाले हैं, आज उनके शरीर मे दाह ज्वर लग रहा है, हम कैसे शाति की सास ले ? जब उन्हे ज्ञात हुआ कि वैद्य ने बावना चन्दन का लेप बताया है तो फिर उस चन्दन का लेप करने मे कौन पीछे रहे, अनेक नौकर चाकर चन्दन घिसने के लिए तत्पर थे—किन्तु अत पुर में रहने वाली महाराणियो ने विचार किया कि इस प्रकार के सेवा के लाभ से हम वचित क्यो रहें ? स्वामी के शरीर मे दाह ज्वर लग रहा है, एक व्यक्ति, दो

कवि की बनाई हुई है और कवि ने सासारिक मनुष्यो की भावनाओ को ध्यान में रखकर धर्म और मोक्ष के साथ काम और अर्थ को भी जोड़ दिया। वीतराग देव ने कहा है—

तहारूवस्स समणस्स माहणस्स वा अन्तिए एगमवि
आयरिए धम्मियं सुवयण सोच्चा णिसम्म तओ
जायसवेगे जायसड्ढे तिव्वधम्माणुरागरत्ते से ण
जीवे धम्मकामए पुण्ण कामए सग्ग कामए मोक्ख कामए" '

—भगवती सूत्र

—तथारूप श्रमण अर्थात् निर्ग्रन्थ और महान-अर्थात् वीतराग वाणी का अनुसरण करने वाला श्रावक उसके पास से वीतराग देव का धर्म युक्त एक भी सुवचन सुनकर वह सवेग युक्त होता है, श्रद्धा सम्पन्न होता है तो वीतराग देव के कहे हुए धर्म के प्रति तीव्र धर्मानुराग उत्पन्न होता है। और जब तीव्र अनुराग पैदा हुआ तो सम्यग् दृष्टि-हेय,ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान भी प्राप्त हो गया, उसने आत्मा परमात्मा का रहस्य समझ लिया, यह भी समझ लिया कि पुण्य जानने योग्य है? ग्रहण करने योग्य है? अथवा छोड़ने योग्य है? और उसके साथ ही काम क्या है, अर्थ क्या है? मोक्ष क्या है?

बन्धुओ, अब जरा इन वाक्यो के अर्थ की तरफ ध्यान दीजिए और उस दृष्टि से चिन्तन करिए। जिसमे धर्म के प्रति प्रगाढ श्रद्धा होगी, वही धर्म की कामना करता है। कामना अर्थात् एक दृष्टि से धर्म की आशा आकांक्षा करना, आशा करना, अभिलाषा करना यह सब अर्थ इसमे समाहित हैं। यह मेरा कथन नही है। कवि का भी वचन नहीं है स्वय भगवान श्री वीतराग देव की स्पष्ट वाणी है। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि सर्वथा सभी कामनाओ से मुक्त रहना चाहिए। मुक्त भी होते हैं, पर व्यवहार मे, वह कौन-सी कामना से मुक्त होने की बात है? यह समझने की आवश्यकता है। उस कामना से हमे मुक्त रहना चाहिए जो मोहजनित हो, जिसमें

होने के नाते निर्णय की शक्ति को पहले समझना है। जहाँ आत्मा का स्वरूप आता है, आत्मा की शक्ति का विश्लेषण आता है—वहा कुछ मतभेद है। कुछ दार्शनिको का कथन है कि आत्मा नाम का तत्व कहा है, जो कि निर्णय करें ? आत्मा हमको दिखती नही है। जो पाच इन्द्रियो से नही दिखती है उसको कैसे मानें ? इन्द्रियो से परे [दुनिया की बहुत चीजें है, लेकिन हम मानने को तैयार नही है। आज विज्ञान बढा चढा हुआ है। वैज्ञानिक दृष्टि से लोग परीक्षण कर रहे हैं। लोग सोचते हैं, बस, विज्ञान की तुला पर जो चीज ठीक उतर जाय वही सही तत्व है। विज्ञान की तुला पर सही नही उतरे तो वह सही नही है। इस प्रकार जब विज्ञान प्रत्यक्ष वस्तु का प्रमाण देता है, प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मान कर चलता है तो हम अप्रत्यक्ष को कैसे मानें ? इस प्रकार की विचाराधारा चलती है। जब उनसे कहा जाता है कि भाई ! तुम सोचो, जब आत्मा नाम का तत्व नही हैं, तो जीवन क्या है ? बिना जीवन के शुभ-अशुभ का निर्णय कैसे हो ? जैसा कि आप सोच रहे हो प्रत्यक्ष जो दिखता है वह सब सही है तो यह भी एक प्रकार का निर्णय ही है। तो बताइये यह निर्णय लेने वाला कौन है ? उनका उत्तर आता है,यह निर्णय लेने वाला यह शरीर है ? शरीर के अतिरिक्त कोई तत्व नही है। "**शरीरमेव निर्णायकम्**।" शरीर ही निर्णायक है। वे ऐसा तर्क देते हैं। वह तर्क इस रूप मे देते है—शरीर को निर्णायक मानते हैं क्योकि यह पाच भूतो से बना है, पाच भूतो से शरीर बनने के बाद इसमे निर्णायक शक्ति तैयार हो गई। हम उस शक्ति से निर्णय लेते हैं, अत हम प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं। वे इस तर्क के साथ अपनी बात का पोषण करते हुए यह उदाहरण देते हैं कि जैसे अलग-अलग महुवा आदि द्रव्यो में मादकता नही है किंतु उनके सयोग से मादकता उत्पन्न हो जाती है। वैसे ही इन पाच भूतो के सम्मेलन से निर्णायक शक्ति का सर्जन हो जाता है।

आप विना शरीर के द्वारा उद्यम किए, कामना रहित हो सकते हैं? नही। विना शरीर के किसी सासारिक प्राणी ने अपना पूर्ण विकास प्राप्त नही किया। चाहे वे तीर्थंकर ही क्यो न रहे हों। वज्रऋषभनाराच सहनन और समचतुरस्रसंस्थान तीर्थंकरो के और अन्य पुण्यशाली जीवो के होते हैं और ये सभी पुण्य के फल कहे गये हैं। उस पुण्य प्राप्ति की स्थिति को तीर्थंकर जैसे प्रवल महापुरुष भी साधक अवस्था मे नही छोड सके है। शास्त्रकारो ने इस पुण्य के लिए कहा है कि यह जानने योग्य तो है ही, पर साथ ही ग्रहण करने योग्य भी है और त्यागने योग्य भी है।

आप प्रश्न करेंगे कि जव पुण्य ग्रहण करने योग्य है तो मोक्ष क्या है? क्योकि पुण्य की जव तक कामना होगी परिपूर्ण मोक्ष नही हो सकता है?

इस प्रश्न का समाधान शास्त्रकार अपेक्षा दृष्टि से देते हैं जीवन की तीन अवस्थाएं मानी गई हैं। प्रारम्भिक, मध्यम और अन्तिम। वस तीन अवस्थाओ मे से गुजरते हुए प्राणी कव पुण्य को तथा सभी तरह की आसाको को, आशाओ को छोडे इसका स्पष्ट उल्लेख वीतराग वाणी मे है। वीतराग वाणी यथार्थ के धरातल पर चलती है, वह हवाई महल नही है।

प्राणी वर्तमान मे साधना के धरातल पर चल रहा है। उसे अपने जीवन का निर्वाह भी करना है, अपने परिवार, समाज और देश के प्रति भी उसके कुछ कर्त्तव्य हैं उनका निर्वहन भी करना है। आज की परिस्थितियो से भी प्राणी को निपटना है। राष्ट्र मे एक पवित्र वातावरण के निर्माण मे भी उसे अपना योगदान देना है। अपने परिवार और समाज के प्रति भी उसके जो कर्तव्य है उनको पूरा करते रहना है और यह सव करते हुए अपने जीवन को भी जीना है। किन्तु यह सव कैसे? यही प्रश्न हमारे सामने वार-वार आता है "कि जीवन" जीवन क्या है, इसे कैसे जीया जाय? कैसे इसे

सम्मुख जो पदार्थ है उनको भी हम पूरा नही देख पाते हैं। अभी आप यहा बैठे हुये हैं, इस लाल भवन मे आप क्या-क्या देख रहे है ? आपसे अलग अलग प्रश्न किया जाय कि आपको क्या-क्या दृष्टिगत हो रहा है ? आपकी आँखें क्या देख रही है ? तो उत्तर आयेगा दीवार को देख रही है, खम्भे देख रही है, दीवार पर टगी घडी देख रही हैं, और जो भाई वहिन यहा बैठे हुये हैं, उन्हे भी देख रही है, लेकिन इसके अतिरिक्त एक पोलार है, क्या इसमे कुछ देख पा रहे हैं। क्या इस पोलार मे कोई तत्व नही है। आप ऐसा न सोचें, क्योकि इसमे भी एक तत्व है। इसमे ठसाठस पुद्‌गल भरे हुये हैं और वे भी असख्य हैं। शास्त्र की दृष्टि से और वीतराग की दृष्टि से इसका आप थोडा सा अनुमान कर सकते हैं। ऊपर देखें तो आपको इस छोटे से छेद मे से आकाश दिखाई देता होगा। इसमे से सूर्य की किरणें आ रही है, इन किरणो मे आपको असख्य तूतडे उडते हुए दिखेंगे ये तूतडे इतने सूक्ष्म है कि दुग्धादि पदार्थों मे पडते समय आपको उनका भान नही हो पाता हैं। ये तूतडे सारे कमरे मे विद्यमान हैं वे आपको केवल सूर्य की किरणो मे ही दीख पड रहे है। छाया मे उन्हे आप नही देख पाते। आगे की स्थिति लीजिये, आप वादल देख रहे हैं, आप दूसरी चीजें देख रहे हैं। कुछ आख से नही दिखने वाली चीजें हैं, उनके लिए शक्तिशाली दूर वीक्षण (माइक्रोस्कोप) यत्र का प्रयोग होता है उससे आकाश मे विद्यमान तत्वो को देखा जाय तो वहुतेरे तत्व आपको दिखने लग जायेंगे।

पानी मे भी जीव हैं ?

वीतराग देव ने आध्यात्मिक जीवन दृष्टि से यह वतलाया है कि पानी की एक वूद मे असख्य जीव है, लेकिन एक वूद पानी मे असख्य जीव हैं—इस वात का प्रमाण प्रत्यक्ष नही है। नास्तिक लोग इसे 'गप्प' मान सकते हैं। क्योकि पानी के जीव उन्हे प्रत्यक्ष नही

की है और कौन-सी लकडी की। यह जानकारी करने के वाद पत्थर की नाव को तो आप छोड देना, और लकड़ी की नाव ले लेना उसमे वैठकर समुद्र के परले किनारे पहुँच जाना वहा जाकर इस लकडी की नाव को भी छोड़ देना है, और किनारे पर उतर कर अपने गन्तव्यस्थल पर पहुँच जाना है। लेकिन एक वात है, वीच समुद्र मे तरग नही लाना है और कही उस तरंग मे आप यह मत सोच वैठना कि इस लकडी की नाव को जव छोडना ही है तो अभी क्यो न छोड़ दिया जाए। किनारे तक पहुंचने तक इस नाव के वोझे को क्यो ढोया जाय। ऐसा मत करना। केवल किनारे पर पहुँचने के वाद ही इसको त्यागना है, यह ध्यान मे रखने की वात है। साथ ही यह भी ध्यान मे रखना है कि जिसने हमे इस किनारे पहुँचाया उस विचारी नाव को किनारे पहुँच कर कैसे छोड़े ? यह विचार करके उससे चिपके भी नही रहना है। किनारे पर पहुँचते ही उसे तुरन्त छोड देना है और अपने लक्ष्य की तरफ वढ़ जाना है। अगर उस किनारे पहुचकर भी उस नाव मे ही वैठे रहे तो आपका जो लक्ष्य है—चरम मोक्ष की प्राप्ति उसे आप प्राप्त नही कर सकेंगे जैसे जिस ध्येय से आप वहा जा रहे हैं मणि माणिक्य आदि के लिये उन्हे प्राप्त नही कर सकेंगे। क्योकि मणि माणिक्य या मोक्ष जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त करना है इसलिए किनारे पर पहुँचते ही हमे नाव को छोड देना है। किनारे पहुच कर लकडी की नाव को छोड देगे तो भव्य भवन रूप मोक्ष मे पहुच जावेगे।

तो जिस तरह से पत्थर की नाव को तो शाश्वत रूप मे त्याग कर देना है और लकडी की नाव को ग्रहण कर लेना है। लकड़ी की नाव को ग्रहण करते हुए भी अन्त में उसे भी छोड देना है उसी तरह से हमारे जीवन के ध्येय को हमे प्राप्त करने मे सहायक रूप पुण्य को तो ग्रहण करना है और डुवाने रूप पाप को पहले ही सर्वथा छोड़ देना है। ध्येय की प्राप्ति पर पहुचने पर पुण्य को भी छोड़ कर

सम्बन्धियो को भी ज्ञात नही हुआ है, लेकिन जब इसको वहा भेज देंगे और कुछ दिन तक नही लायेंगे तो बाद मे लोगो में चर्चा का विषय बनेगा। इससे हमारा मुँह काला हो जायगा इसलिए पिता के यहा छोडना ठीक नही है। इसका तत्काल इलाज करना है। आज सूर्य अस्त हो उसके पहले पहले। गोविन्द ने कहा, माता श्री ! मैं नही समझ पा रहा हू। कैसे इलाज हो। इतने मे पिता चिन्तन करके कहता है, पुत्र मेरे मस्तिष्क मे एक उपाय आ गया है। जगल के बीच मे एक अपनी बगीची है, उस बगीची अन्दर पेडो के बीच मे एक भयकर कुआ है। इसको तुम बगीची की हवाखोरी करने की दृष्टि से वहा ले जाओ और कुए के नजदीक ले जाकर कुए मे धक्का दे देना। जब कुए मे गिर जाय तब कुछ देर तक तो मत बोलना। थोड़ी देर के बाद हल्ला करना। कुछ रोना, हाय यह क्या हो गया, मेरी पत्नी कुए मे गिर गई। जितने प्राणी वहा होंगे उन तक तुम्हारी पुकार पहुच जायगी। बगीची के जो रक्षक हैं वे हमारे पास पहुचेगे। हमारे पास समाचार आयेगा तो हम भी पहुच जायेंगे। और सब कार्य ठीक हो जायगा। यह उपाय ठीक लगा। आप देखिये, यह निर्णय हो रहा है। यह कैसा निर्णय हो रहा है ? यह सस्कारित जीवन का निर्णय है ? यह जीवन का निर्णय है या अधकार का निर्णय है ? आप सोचेंगे, ऐसा कृत्य नही हुआ होगा। आज के जमाने मे ऐसे कृत्य नही होते हैं ? मैं क्या बताऊँ, मेरे कानो मे ऐसे कुछ कुछ शब्द आ जाते हैं। वैसे कृत्य नही होते हैं, लेकिन चाँदी के टुकडो के लिये इससे भी भयकर कृत्य होते हैं। सुनने को मिला, एक कन्या का विवाह हुआ। उसके बाद ससुराल वालो के मन मे आया, इस कन्या के साथ पैसा कम आया है। इसको खत्म करो। दूसरी कन्या के साथ विवाह करेंगे तो और पैसा आयेगा। इस कारण उस कन्या को जला दिया है या दूसरे तरीके से खत्म कर दिया जाता है। ये ऐसे अन्याय और अत्याचार कभी कभी कर्णगोचर होते हैं। आप

कर्मयुक्त है उसे कर्म रहित निर्मल और ब्रह्म रूप बनाने के लिए शरीर की स्थिति जो पुण्य की प्रकृति है वह साधन रूप है, यह मान लिया इस प्रकार पुण्य भी साधनरूप है, यह भी मान लिया। पर आगे जो ज्ञानियो ने यह कहा कि—

सग्ग कामए

यह स्वर्ग की कामना करने की बात कैसे कही जा रही है ? तो मैं बताना चाहता हू कि इसके पीछे भी एक शास्त्रीय रहस्य है जो हमे समझना है। इसमे भी स्पष्ट कहा है कि स्वर्ग की आकाक्षा मोह दशा के कारण नही करनी है । आशक्ति उसमे भी नही रखनी है। पर स्वर्ग की कामना एक तरह से इसलिए की जाती है कि इसमे भी विश्राम लेने की कभी-कभी आवश्यकता पड़ सकती है। विश्राम स्थल के रूप मे इसकी कामना की जाती है।

आप इसे इस तरह से समझ लीजिए कि एक व्यक्ति है। उसे कलकत्ता जाना है। वह कलकत्ता हवाई जहाज से उड कर जा रहा है। पर एक ही उडान मे हवाई जहाज कलकत्ता नही जा सकता, इसके लिए वह बीच मे किसी शहर के हवाई अड्डे पर थोड़े बहुत समय के लिए विश्राम हेतु रुकता है और थोडे समय विश्राम करके फिर उड़ चलता है और कलकत्ता पहुचता है।

पर अगर वह यात्री बीच मे पडने वाले हवाई अड्डे पर पहुंच कर यह सोचने लगे कि यहा बड़े अच्छे विशाल भवन हैं, सभी तरह की सुख सुविधाएं, यहां बडा सुन्दर विश्राम गृह सरकार ने बना रखा है, तो ऐसे सुन्दर स्थान को छोडकर अब क्यो आगे जाऊं, यहीं रह जाऊं तो अच्छा है। यह सोचकर अगर वहीं रह जाता है तो अपने गन्तव्य स्थान पर नही पहुच सकेगा, पर अगर वह यह सोचे कि यह तो केवल विश्राम स्थल है, भले ही बडे-बड़े विशाल भवन क्यो न हो, सभी तरह की सुख सुविधाए क्यो न हो, मुझे तो अपने लक्ष्य पर पहुचना है, कलकत्ता ही पहुचना है,

हार्दिक अभिनन्दन !

अनन्त आकाश से विशाल,

सागर से गम्भीर,

जाह्नवी से पवित्र,

अरावली से अचल—

परम आदरणीय जैन आचार्य श्री १००८ श्री नानालाल जी म० साहब की सेवा में सादर

वन्दन ! अभिनन्दन !

श्री वर्द्धमान श्वे० जैन स्थानकवासी श्रावक संघ

जयपुर (राजस्थान)

कहां जाना चाहते हो ? अगर इसके उत्तर मे वह यह कहे कि यह तो मुझे मालूम नहीं। तो उसे आप क्या कहेंगे कि यह तो पागल मालूम होता है।

वैसे ही इस जीवन मे रहते हुए आपसे अगर पूछा जावे कि आपका लक्ष्य क्या है, आप कहां जाना चाहते हैं, क्या करना चाहते हैं तो आप तत्काल उत्तर देंगे कि हम अपने जीवन को इस तरह से सस्कारित करना चाहते है कि जिसमे 'कि जीवनम्' जीवन क्या है इसके हल को ढूँढ सके और ढूँढ कर उस पर आचरण करते हुए उसके अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। यह भी आशा है इसको दूसरे शब्दो मे कामना कह सकते है। जैसा कि तीर्थंकर भगवान के लिए नमोत्थुणं मे पाठ आया है **सम्पविउओ कामाण** यानि मोक्ष को प्राप्ति की कामना रखने वाले ऐसे तीर्थंकर भगवान के लिए भी कामना का विशेषण लगा है तो नीचे के साधकों के लिए कोई आपत्ति नही है।

पर, इसके विपरीत आप यह कह बैठे कि हमारा तो कोई ध्येय नही है, तो क्या बिना ध्येय के आप भी पागल की तरह यह सब क्रियाएँ कर रहे है ? इस तरह से बिना ध्येय की क्रियाएँ करने मे क्या लाभ होगा ?

प्राणी अगर निश्चित ध्येय के साथ चलता है और अपना एक व्यवस्थित कार्यक्रम बनाता है तो मोक्ष की भी वह अभिलाषा रख सकता है। आसक्ति के साथ वह अर्थ और काम से ही बधा नही रहता, मोह-जनित लगाव उसका उससे नही रहता। वह बीच के समय मे कदाचित् वह काम और अर्थ की भी आकाक्षा करता है, तो परिवार के प्रति अपने कर्तव्य निर्वहन आदि के लिये करता है, और मोक्ष और धर्म के अन्तरपुट में उनको रखकर चलता है। गृहस्थ अवस्था में रहते हुए भी मर्यादित जीवन, सुसंस्कारित जीवन बिता

का उद्धार कर सकते हैं लेकिन यह अबला ! जाति अपने जीवन का उद्धार किस प्रकार कर सकती है ?

अबला, नहीं सबला है ।

साधारण भाषा मे नारी को 'अबला' भी कहा जाता है। जहा तक विशुद्ध आत्मिक दृष्टि का प्रश्न है, यह शब्द उपयुक्त नही लगता ! हा, जब आत्मा अपनी शक्ति को भूल बैठती है, ऐसी स्थिति मे उसे 'निर्बल' सज्ञा मिल जाती है। किन्तु यह सज्ञा उसकी वास्तविक सज्ञा नही है ! यही तथ्य अबला के विषय मे जान लेना उपयुक्त रहेगा । सत पुरुषो का कथन है कि—नारी जाति मे भी वह शक्ति है, जिसके द्वारा वह जीवन के सही रूप को पाकर अपना उद्धार कर सकती है । साध्वी बनकर, तपचर्या करके अपने जीवन का उद्धार कर सकती है। पिता श्री यह कहते नारी जाति किस प्रकार अपने जीवन को रखे ? तब महात्मा जी ने कहा—नैतिकता की दृष्टि से हर बात को सोचे—विचारे और गृहस्थ धर्म मे रहते हुये भी पूर्ण पतिव्रत धर्म का पालन करना चाहिये और एक पतिदेव को ही अपने जीवन का सर्वस्व समझना चाहिये। जो स्त्री अपने धर्म का पालन करती हुई अपने जीवन को पतिनिष्ठ होकर रखती है वह आध्यात्मिक शक्ति को प्रवाहित करती है। वह धर्म पत्नी के रूप मे रहे, पाप पत्नी के रूप मे नही हो और उस पत्नी का यह कर्तव्य होता है कि मेरे पतिदेव गैर रास्ते पर न चले जायें मेरे पति कोई बुरा काम न करें। ऐसा आध्यात्मिक जीवन का उत्तरदायित्व वह धर्मपत्नी लेकर चलती है। इसलिये शास्त्रो में उसे धर्मपत्नी कहा गया है-धर्म सहायक कहा गया है। परिवार के सारे सस्कार एक अच्छी पत्नी पर आश्रित होते हैं इसलिये ग्रहस्थाश्रम मे रहते हुए भी अपने जीवन की शक्ति को सम्पादित करना चाहिये, तभी वह जीवन के [illegible]

वाहर की ताप की स्थिति थी वह भी अत्यधिक उग्र हो गई। उसने सोचा शायद एक पुडिया से ऐसा हो गया है दूसरी पुडिया और ले लूँ तो इसी तरह शाम को भी विपरीत दशा मे पुडियायें ले ली—जो खाने की थी उसका लेप कर लिया और जो लेप करने की थी उसको शहद मे मिलाकर चाट लिया। इसमे इतनी वीमारी वढ़ गई कि रात्रि शान्ति मे नही वीती। उसने सोचा रात्रि मे मैं मनुष्य लोक मे हूं या नही हूं इतनी वेदना उसको सताने लगी। प्रात काल वह फिर वैद्यराज जी के पास पहुचा और अपना हाल कहने लगा। वैद्यराज जी वडे अनुभवी थे। वीमारी का हाल सुनकर और सारी स्थिति का अध्ययन कर पूछा—कौन कौनसी पुडिया किस किस प्रकार ली है ? तो उसने वताया कि अमुक अमुक प्रकार ली है। वैद्यराज जी समझ गये कि मरीज ने उल्टी पुडियाये ले ली हैं। जो पुड़िया खाने की थी उसका चमडी पर लेप कर लिया और जो लेप करने की थी उसको शहद मे डालकर खा लिया इसलिये तुम्हारा रोग वढ गया है। वैद्यराज जी ने दुवारा उसे चार पुडियाये दी और ठीक प्रकार समझा दिया जव वह दुवारा दवा को उचित विधि से यथास्थान लेता है तो उसका रोग मिट जाता है। यह एक रूपक है। आज भी इसी प्रकार प्राणी यतियो और साधुओ के पास अपने जीवन के प्रश्न को हल करने के लिये—धार्मिक जीवन विताने के लिये, पहुँचता है। सन्त महात्मा भी यही कहते हैं कि दो पुड़िया को अन्दर मे लो और दो पुड़ियाओ का वाहर मे लेप करो। लेकिन लेने वाले क्या कर रहे हैं ? उनको उल्टी-सीधी ले लेते है। ये चार पुडियायें हमारे पास कौन सी है ? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की पुडियाये है। अव इन चार पुडियाओ में से दो पुडिया जो धर्म और मोक्ष की है वह अन्दर मे लो, शहद के साथ जिससे सारा जीवन पवित्र वने और सस्कारित जीवन वने और

चेतन जान कल्याण करन को आन मिल्यो अवसर रे।
शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभू गुण मन चचल थिर कर रे।

हे चेजन, यह कल्याण करने का सुन्दर अवसर मिला है। इस मे जो मनुष्य जन्म मिला है तो यथा सम्भव शान्ति से शास्त्रो का श्रवण कर। शास्त्र श्रवण का प्रसग है, ऐसे अवसर पर हे चेतन, तू प्रमाद मे मत रहे। कदाचित कोई यह कल्पना करें कि मैं इस समय प्रभु के स्वरूप को कैसे पहिचानू ? क्योकि परमात्मा मेरी इन चमडी की आखो से नही दीखता है। मैं अपनी इन्द्रियो से प्रभु का सही ज्ञान नही कर सकता हू। तो यह कल्पना असगत है क्योकि यह इन्द्रिय जन्य ज्ञान सीमित है। उनका दायरा छोटा है। इन्द्रिया अमुक सीमा तक ही वस्तु का ज्ञान कर सकती है। आगे उनकी गति नही है। मन की स्थिति का भी चिन्तन करू तो मन की गति भी ऐसे तो वहुत तीव्र है, लेकिन तीव्र होने पर भी वह भी सीमित ही है। अत प्रभु के वास्तविक स्वरूप को समझने मे वह मन भी समर्थ नही हो सकता है। मन के माध्यम से कल्पना कर सकते हैं। तो मैं प्रभु को कैसे स्मरण करू, और कैसे मैं आत्मा का कल्याण कर सकू ? इसके लिये बुद्धि के सामने एक प्रश्न वाचक चिन्ह वन जाता है। इस प्रश्न का उत्तर कवि ने साथ ही दे दिया है कि तू अपने इन्द्रिय और मन से प्रभु को पहिचानने मे समर्थ नही है। अत. शास्त्र के प्रमाण की वात कही गई कि—

शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभु गुण मन चंचल थिर कर रे।
श्री श्रेयास जिनन्द सुमर रे॥

शास्त्र मे प्रभु के स्वरूप का वडा ही सुन्दरतम वर्णन है। शास्त्र के प्रमाणो से तुम प्रभु के स्वरूप को पहिचान कर इस चंचल मन को स्थिर कर लो। मन के स्थिर हुए विना उस आत्मिक स्वरूप का दर्शन नही होगा। मन जितना चचल है उतनी ही आत्मा की शक्ति चचल होती है। मन के सहारे आत्मा की शक्ति प्रवाहित होती है।

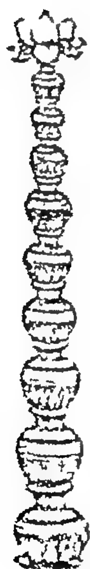


जीवन को सद्सस्कार और सद्विचार

से

पावन करने वाली सत वाणी

सबके लिए सुखद हो !



पूनमचंद बोथरा (कपड़े के व्यापारी)

पथारवाडी

(जि कछार, आसाम)

बन गया तो आत्मा के कल्याण का मार्ग बहुत शीघ्र ही प्रशस्त बन सकता है। यदि तुमने मन को उस स्थायी तत्व पर नही टिकाया, नाशवान तत्वो पर मन को केन्द्रित किया तो थोडे समय तक तो वह रहेगा, लेकिन जड पर केन्द्रित होने से वह जड पदार्थ गिर जायगा, बिखर जायगा तो भागेगा और सोचेगा कि अब मैं किसको पकडूँ ? कल्पना करिये एक कपूर डलो है। कपूर की डलो के ऊपर मनुष्य अपने मन को केन्द्रित कर ले और यह सोचले कि मेरा मन कपूर से सम्बन्धित है, यह कपूर साफ है, श्वेत है। इसके साथ मेरा मन भी सम्बद्ध है और वह भी इसके समान श्वेत बने, काला न रहे, इसमे कोई धब्बा न रहे। इस भावना से कपूर की डलो पर अपने मन को केन्द्रित कर लीजिये और भावना यह रखें कि यह कपूर की डलो ऐसी की ऐसी रहे। उसमे कोई परिवर्तन नही आवे। यह ऐसी की ऐसी रहेगी तो मेरा मन भी ऐसा ही बना रहेगा। इस भावना से कपूर की डली के ऊपर अपने मन को केन्द्रित कर दीजिये। लेकिन यह कपूर की डली, या वह कपूर की टिकडी कितने समय तक उस रूप मे रह सकेगी ? क्या वह स्थिर रह सकेगी ? वैसा का वैसा रूप उसका स्थिर रहेगी ? क्या इसका कभी आपने अनुभव किया है। कपूर का उडने का स्वभाव है। वह खुला पडा रहा तो जल्दी ही उड जायेगा। और कदाचित मनुष्य उसे उडने से रोकने के लिये अपनी मुट्ठी के अन्दर बाध लेता है और यह सोचता है कि इससे यह उड़ेगा नही लेकिन फिर भी कपूर उडेगा ही। जब वह चीज उड गई तो कैसे उसके ऊपर मन टिकेगा। आप मन को उस पर केन्द्रित करना चाहते थे, उस पर मन को स्थायी करना चाहते थे, लेकिन कपूर की टिकिया तो उड गई। तो आप ज्ञान की दृष्टि से चिन्तन करिये कि कौन कौन से पदार्थ ऐसे हैं जो कपूर की टिकिया के स्वभाव के नही है ? कौन से पदार्थ स्थिर हैं जिनके ऊपर मेरा मन सदा स्थिर बन जाये। यदि इस प्रकार का चिन्तन करने के लिए

सुयाणं धम्माण ओगिण्हणयाए उवधारणयाए
अब्भुट्ठेयव्व भवइ । — स्थानांग सूत्र

सुने हुए धर्म को ग्रहण करने, उस पर आचरण करने को तत्पर रहना चाहिए ।

---

५ | बंधुत्व भावना

जय जय जगत शिरोमणि, हूँ सेवक नें तू धणी ।
अब तौंसु गाढी बणी, प्रभू आशा पूरो हम तणी ।
मुझ मेहर करो चन्द्र प्रभु, जगजीवन अन्तर्यामी ।
भव दुख हरो सुनिए अर्ज हमारो, ओ त्रिभुवन स्वामी ॥

बन्धुओ, यह चन्द्र प्रभु भगवान की प्रार्थना है । आपके सामने प्रार्थना का जो शाब्दिक परिवर्तन आ रहा है,वह कविता का भी परिवर्तन है । लेकिन प्रभु के गुणो का,भगवान की शक्ति का, भगवान के पवित्र स्वरूप का परिवर्तन नही है । परमात्मा के चरणो में हम कैसे भी शब्दों से प्रार्थना करे,प्रार्थना की पंक्तियां हिन्दी कविता के रूप मे हों, संस्कृत भाषा मे हों, प्राकृत, इंग्लिश या अन्य उर्दू फारसी आदि किसी भी भाषा मे क्यों न हो, इस भाषा के आवरण के पीछे प्रभु को विस्मरण नहीं करना चाहिए। भाषा के पर्दे को हटा कर परमात्मा के निराकार स्वरूप को देखने की आवश्यकता है ।

और भगवान् कुन्थुनाथ से कहने लगे, भगवन् ! बताओ, यह मेरा मन क्यो वश मे नही आता है ? मैं इसका कितना ध्यान रखता हू, कितना इसको लाड प्यार करता हू, यह मन जिस वस्तु की भी चाहना करता है वही वस्तु मै इसको देता हूं, मन अमुक रूप देखता है तो दिखाता हू और अमुक स्थान पर ले जाना चाहता है तो ले जाता हू, जैसे जैसे यह कहता है वैसे वैसे मै इसका लाड़ प्यार करता हू। लेकिन यह सब प्रयत्न करने पर भी यह मन मेरी कुछ भी बात नही मानता और दूर दूर भागता रहता है। रात और दिन इस हैरानी से हैरान हू। दिन को भी यह ज्यादा देर तक एक जगह नही टिकता, जागृत अवस्था मे भी दिन भर यह मन स्थिर नही रह कर इधर-उधर वेकावू भागने लगता है और सोता हू तो भी यह हैरान करता है, शान्ति से मै विश्राम नही कर सकता, यह मन चचल वना रहता है और ताने वाने बुनता रहता है, कितने ही जाल बनाता है। हे प्रभु ! मै इस चचल मन को किस प्रकार वश मे करूँ ? जब आध्यात्मिक रस मे रमने वाले महात्मा और कवि भी हैरान हो गये तो दूसरो का तो कहना ही क्या ?

आज मन को वश मे करने के तरीके अजीब से हैं। त्राटिक मे दृष्टि उसकी ओर लगायी जाती है, दृष्टि को उस पर गढा कर बैठ जाता है, पलक नही गिरने देता है। लेकिन मन तो फिर भी विचलित हो जाता है। परिणाम यह होता है कि दृष्टि की रोशनी मद पड जाती है, लेकिन मन को स्थिर नही कर पाता है। हठयोग मे ऐसे अनेक खतरे आ सकते हैं जिससे मनुष्य की जिन्दगी व्यर्थ सी हो जाती है। आपने सुना होगा कि अमुक मनुष्य चतुर था और योग साधना की बड़ी बडी बाते करता था। एक रोज देखा गया कि वही व्यक्ति पागल होकर घूम रहा है। और अड खड बोल रहा है। यह क्यो हुआ ? इसका कारण यही है कि उसे-योग साधना कराने वाला योग्य व्यक्ति नही मिला। योग्य गुरु के अभाव मे साधना भी

होती है और अन्य देश की पराजय इसमे चाही जाती है, लेकिन भगवान की जय बोलने से समग्र विश्व की जय चाहे और सारे ससार के अन्दर रहने वाले प्राणियो की जय समझे, तभी वह भगवान की जय बोल सकता है। जो व्यक्ति भगवान की जय बोल करके यदि यह चाहे कि प्रभु, मैं आपकी जय बोल रहा हू, मैं आपका भक्त हू, आप मेहरबानी करना, मैं पडोसी के साथ लड रहा हू इसलिए आप मददगार हो करके पडौसी की पराजय करना और मेरी जय करना। इस भावना से अगर जय बोल रहे है तो आपने प्रभु के स्वरूप को नही समझा है और आपने सासा रक तौर पर भगवान को अपने साथ घसीट लिया है।

आज के अधिकाश मनुष्य प्रभु को एक तरह का खिलौना समझ रहे हैं। थोड़ी सी कठिन परिस्थितिया सामने आई और झट से भगवान को याद कर लिया। जरा कभी किसी व्यक्ति से टकराहट हो गई, लड़ने लगे कि झट से भगवान को पुकारने लगे—भगवान आइए, आइए, यह मेरे मे दुश्मनी कर रहा है, इसको खत्म करिए और कदाचित् दूसरा भी भक्त हो और भगवान को वह भी पुकारे कि भगवान आइए,मुझसे लडने वाले को खत्म करिए तो कहिए क्या होगा? दोनो भगवान के भक्त और भगवान रह गया एक, अगर भगवान आए तो किसकी मदद करे। इस तरह से भगवान को घसीट करके मनुष्य राग द्वेष की परिणति मे डाल देता है और भगवान का दुरुपयोग करने को तैयार होता है जैसा कि उनका चित्त, मानस बन गया है। वह अपने घर के अन्दर वस्तुओ के टुकडे करता है,मकान का विभाग करता है और अन्य चीजो को बाटता है, जमीन के साथ साथ मोहल्ले और गाव के टुकडे करता है और इसमे भी वह सतोष नहीं पाता तो वह भगवान को भी टुकडो मे बांटना चाहता है। भगवान को भगवान के सही स्वरूप मे न समझ करके उनको टुकडे-टुकडे के अन्दर बांट कर भगवान को एक पक्ष में लाकर खडा

कम से कम दीजिये। एक भी नही ? एक घटा भर भी आपको इस ओर ध्यान देने का अवकाश नही। चौबीस घटे हाय-हाय करते-करते चले जा रहे हैं, चौबीस घटे मशीन की तरह दौड़ रहे हैं। और दौड़ कर भी प्राप्त क्या करने वाले हैं ? क्या लेने वाले हैं ? चौबीस घटे इन चन्द चाँदी के टुकडो को प्राप्त करने मे बिता देते हैं, सौ वर्ष या ८० वर्ष की जिन्दगी सारी को सारी इसमे लगा दी और कदाचिद् कुछ सम्पत्ति प्राप्त भी कर ली, कितनी ? अरबो खरबो की प्राप्ति कर ली, उसके बाद भी आपका मन स्थिर हुआ क्या ? अब तो अरब प्राप्त हो गये अब तो सतुष्ट है क्या ? नही। सतुष्ट नही।

सच्चे व्यापारी बनिए

मन दौड रहा है। हमने अपने जीवन मे इतना पैसा इकट्ठा किया है, इस मन को पैसे की तरफ लगाया है कि पैसा मनुष्य के पास अरबो, खरबो हो गया है। परन्तु क्या यह आपका सारा पैसा स्थायी रूप से रहने वाला है। क्या यह आपके पास मे टिक कर रहने वाला है। अगर ऐसा नही है तो क्या अपनी शक्ति का अपव्यय नही कर रहे हैं ? आप व्यापारी हैं। यहा पर बैठने वाले भी अधिकतर व्यापरी है। व्यापार कैसे होता है ? उसमे आय-व्यय का ध्यान रखा जाता है और वह व्यापार आप करते हैं जिसमे व्यापारी को अधिक आय होती है और स्थायी वस्तु प्राप्त होती है। इस बात का ख्याल रखे और कार्य करे तो वह सच्चा व्यापारी है और जिसमे आय व्यय का हिसाब न रखा जावे, अन्धाधुन्ध चलता रहे, उसमे व्यय अधिक हो और आमदनी कुछ न हो तो क्या वह सच्चा व्यापारी है ? आप सब चुप क्यो हो। आप कहते हैं, महाराज, हम सावधान हैं। लेकिन सावधान इस विषय मे कि जो नाशवान पदार्थ हैं जो पदार्थ स्थायी नही है उनके लिये शरीर लगा रहे है उसके

भगवान मेरी सब कामनाए पूरी कर देंगे, तो मैं समझता हूं कि यह बहुत ही सस्ता रास्ता मान लिया गया है। हाथ हिलाने की आवश्यकता नही है, पुरुषार्थ करने की जरूरत नही, इधर उधर कुछ भी प्रयास करने की आवश्यकता नही है, इस भावना से यदि इन्सान चलेगा तो वह न प्रभु के स्वरूप को ठीक से समझ पाएगा और न अपने जीवन की समस्याओ को ही हल कर पाएगा। इस प्रकार सोचने से मनुष्य का जीवन परतन्त्र बन जाता है और परतन्त्रता के अन्दर वह अपने जीवन के स्वतत्ररूप को भूल जाता है। यहा इस प्रार्थना की कडियो मे भी आपको चिन्तन करना है। भगवान को हम स्वामी मान रहे है और सेवक की स्थिति मे चितन कर रहे हैं, इसका इतना ही तात्पर्य लेना है कि, प्रभु, मैं इस वक्त कर्मों से युक्त हूं, कर्मों से आवद्ध हू, कर्मों की जजीरो से जकडा हुआ हू, मैं ससार के जेलखाने का कैदी हू, इस वक्त मैं आपकी तरह से स्वतन्त्र नही हू, आप सदा के लिए स्वतन्त्र वन चुके है, इसलिए मैं इस परतन्त्रता के वन्धनो से मुक्त होकर, इस ससार के जेलखाने से निकल कर आपकी वरावरी के यानी आपके तुल्य शक्ति को सम्पादित करू और अपने जीवन के चरम विकास को प्राप्त करूं। इस भावना मे मैं आपके चरणो मे इच्छा व्यक्त करता हू कि मैं आपका सेवक हूँ और इस भव सन्तति से पार होना चाहता हू। मैं यह नही चाहता हू कि मैं सेवक हू तो सदा के लिए सेवक ही रहू। मैं कभी स्वामी नहीं वन सकूगा, इस भावना का सोचना मनुष्य के लिए हितावह नही है। यह भावना मनुष्य के मन मे वन जाये कि स्वामी सदा स्वामी ही रहेगा और सेवक सदा सेवक ही रहेगा तो सेवक के लिए कभी भी उन्नति होने का प्रसग नही होगा जब कि उनके मस्तिष्क में यह भाव आवें कि मैं भी स्वामी वन सकता हूँ, वशर्ते कि अपने प्रयत्नो से, अपने जीवन को ठीक तरह से समझ करके उसी ढग का पुरुषार्थ करू जिससे कि

सामायिक का जो समय है वह सहज ही निकल जायेगा। सामायिक कर तो लें परन्तु घण्टे भर तक मन नही लगता है। यह प्रश्न हमारे सामने आता है। परन्तु इसमे इस तरह से मन को एकाग्र करके, इस तरह का एक प्रोग्राम बना कर मन को साधने की दृष्टि से चलें तो मन को एकाग्र करने का यह एक प्रारभिक साधन हो सकता है। मन को साथ लिया तो शरीर की स्थिति ठीक वन जायेगी। उसके बाद स्थायी रूप से मन को केन्द्रित करना है, अभी आपको बिजली के वटन की वात कही थी। जो विजली के बटन का ज्ञान रखता है उसको यह भी मालूम रहता है कि कहा से शक्ति आ रही है और कहा पर शक्ति केन्द्र है। वह उससे सम्बन्धित सब चीजो का ज्ञान रखता है। वैसे ही शरीर के अन्दर रहने वाले जो तत्व हैं, यह शरीर ही जीवन नही है, मैं यहा पर मूल स्थिति को समझा रहा हू। इसके साथ-साथ आप मन को और उसके साथ-साथ शरीर को समझेंगे, तो शरीर से सम्वन्धित इन्द्रियो का ज्ञान भी कर सकेंगे। इन्द्रिय और मन से शरीर का ज्ञान होगा, उससे आत्मा का ज्ञान करेंगे और आत्मा के ज्ञान से निर्णायक शक्ति को पहचान पायेंगे। इसी दृष्टि से मैं जीवन की परिभाषा की व्याख्या करना चाहता हू—वह है सम्यक् निर्णायकम् समता मय च यत् तत् जीवनम्। क्या प्रश्न चल रहा है? जीवन क्या है? समयक् निर्णायकम्—निर्णायक शक्ति जिसमे होती है उसको पहिचान सकेंगे। कल मैंने इसका थोडा रूपक रखा था। इन्सान निर्णायक शक्ति का विवेचन नही कर पा रहा है। निर्णायक शक्ति के रूप मे स्थायी तत्व आत्मा को माना जाता है। क्योकि आत्मा ज्ञानवान है निर्णायक है यदि आत्मा को ज्ञान शून्य माना जाय तो उसका अस्तित्व ही मिट जायेगा, जिसमे ज्ञान नही है वह आत्मा नही है भले ही उसको आत्मा की सज्ञा दे दी गई हो। ज्ञान के विना आत्मा नही हो सकती है और विना ज्ञान के निर्णायक शक्ति नही आती है।

"आप जीवन के प्रश्न को हल करना चाहते है लेकिन जीवन की आवश्यकता ही क्या है ? जीवन की कुछ आवश्यकता हो तो हम समझे। आज तो आवश्यकता अर्थ, अधिकार और कर्तव्य की है। अर्थ के विना ससार नही चल सकता है। आप अर्थ की वात करिये कि अर्थ को कैसे वढायें, धन की वात करिये, पैसे की वात करिये, व्यापारिक वात करिये। इसके विपय मे हमको समझाइये कि कैसे अधिक से अधिक धनवान वने। इसकी आवश्यकता को तो हम महसूस करते हैं लेकिन इसको छोडकर जीवन का प्रश्न सामने ला रहे हैं वह हमारी समझ मे नही आता है। जीवन का यह व्यर्थ का प्रश्न क्यो सामने आ रहा है ?" ये विचार प्रश्न उन व्यक्तियो के हो सकते हैं जिनकी वुद्धि का विकास आगे नही हो रहा है, जिन्होने धन को ही जीवन समझ लिया है, जिन्होने पैसे को ही सव कुछ समझ लिया है, और पैसे को जिन्होंने भगवान मानकर अपने आपको पैसे का सेवक समझ लिया है, ऐसे व्यक्तियो के जीवन का वर्णन स्वर्गीय आचार्य श्री कविता मे इस प्रकार किया करते थे कि—

पैसा मेरा परमेसर, लुगाई मेरी गुरु,
छोराछोरी सालिगराम सेवा थारी करू ।

वे व्यक्ति समझते है कि इस ससार में यदि कोई सार तत्व है तो वह पैसा ही है, पैसा ही मेरा परमेश्वर है। पैसे से वढकर और कोई परमेश्वर नाम का तत्व नही है, पैसे से वढकर कोई जीवन नही है, पैसा ही सव कुछ है। साथ ही अन्य किसी गुरु की भी आवश्यकता नही होती है क्योकि वह हमारे घर मे ही है जिनको जग की साक्षी से पत्नी वनाया है वही गुरु है, वह जो कुछ कह दे उसके अनुसार चलना है, और छोरा-छोरी वाल-वच्चे सालिगराम है इनकी सेवा करना है।" इस प्रकार का दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति क्या यह प्रश्न उठायेंगे ? कि हमारा जीवन क्या है ? और

ठीक तरह से चलता है। गोविन्द ने कहा प्रिये, उसने क्या कहा ? भिक्षा लेकर चला गया तो उसने अन्दर की चीजें देखी नही, बाहरी दृष्टि से हवेली देखने लग गया तो उसको क्या सार्टीफिकेट दे दिया कि एक गया। उसने कहा नाथ ! बाहरी हवेली की भी रौनक है और साधु बन जाने के बाद स्वाभाविक दृष्टि पड़ गयी तो ठीक है लेकिन घूर-घूर कर अनिमेष दृष्टि से खडा रह कर देखना यह उसके मन की चचलता प्रकट करता है और आन्तरिक जीवन का इससे साधुपन चला जाता है। मैंने कहा अन्तर और बाहर का साधुपन। बाहर का साधुपन जैसा वेश मे लगता है वैसा है पर एक अन्दर का गया। मैंने तो उसको सावधानी दिलायी। मेरी कोई बुरी भावना नही थी। गोविन्द सुनकर चकित हो गया। आश्चर्य करने लगा। यह अलौकिक बात प्रथम बार सुन रहा हू। मैं क्या कहू। मेरी धर्म पत्नी कहू या ज्ञान की दृष्टि से उसे उच्च स्थान पर बैठाऊँ। यह अत्यन्त जिज्ञासा रख कर आगे का प्रश्न करता है।" उसको कह दिया तुम्हारा एक गया, वह तो समझ मे आ गया। उसने सकेत किया, तुम्हारे दोनो गये। तू क्या समझी ? "प्राणनाथ ? वह थोडा चचल जरूर था। पर उसकी बुद्धि ने मेरे अभिप्राय को समझ लिया। उसने स . त दिया। मनुष्य जीवन मिला है, उसके साथ-साथ पूर्व जन्म की पुण्याई से सारे साधन उपलब्ध हैं। करोड़-पति का घर है, खाने पीने पहिनने की वस्तुओ की कमी नही है, यह सब होने के बावजूद भी यदि तू अपने सासुजी के अभिप्राय के अनुसार कजूस बनी रही और दान पुण्य नही किया तो जीवन खोखला रह जावेगा। आन्तरिक और बाह्य दोनो जीवन चले जावेंगे। न तो ऊपर से स्वच्छ वृत्ति की स्थिति और न अन्दर की स्थिति से वैराग्य भावना। पहला अर्थ तो यह लिया। दूसरा अर्थ यह समझा कि मुझे उस साधु ने यह संकेत दिया कि जीवन मे तीन

तो जमीन रहने को मिल जाय, उनकी जनसख्या भी युद्ध आदि के प्रसग से कम होजाय तो उन्हे परवाह नही, लेकिन सत्ता और सम्पत्ति चाहिए। इस दृष्टिकोण को लेकर जो मनुष्य चलते है वे क्या जीवन के प्रश्न को समझने की कोशिश करेंगे ? जीवन के महत्व का अकन करेंगे ? जो जीवन को जीवन नही समझते हैं। जीवन को मिट्टी का ढेला मात्र समझते हैं वे जीवन की परिभाषा नही समझ सकते है। इधर जो ऊपर से आध्यात्मिक जीवन की बातें करते हैं पर अन्दर मे उनके भी ऐसे ही विचार रहे तो कह सकते हैं कि वे भी जीवन की वास्तविक परिभाषा को नही समझ सकेंगे, पर यादरखिए यदि वे जीवन के स्वरूप को ही नही समझ पायेंगे तो सत्ता और सम्पत्ति को भी स्थायी रूप से नही पा सकेंगे। क्योंकि कहा गया है—जीवन के विना अर्थ व्यर्थ है, सत्ता व्यर्थ है, और जीवन के विना कर्तव्य भी क्या हो सकता है। अत जीवन का स्वरूप समझना नितान्त आवश्यक वन जाता है।

धन, यहीं धरा रहेगा

सिकन्दर ने अपने जीवन मे सत्ता और सम्पत्ति को वटोरने के लिये मनमाने कर्तव्य वनाये और लूट-पाट की। जनता को वहुत पीडा पहुँचाई। फिर भी सत्ता और सम्पत्ति मे अपने आप को मृत्यु के मुँह से बचा नही पाया। मृत्यु के समय वह हाय-हाय करके चिल्लाने लगा। कि कोई मुझे मृत्यु से बचाने वाला मिल जाय तो जितनी सम्पत्ति मैंने एकत्रित की है वह मैं देने के लिए तैयार हूं, लेकिन कोई भी व्यक्ति उसको मृत्यु से नही बचा सका। उसको वचाने वाला कोई नहीं मिला। तो आप सोचिये कि जीवन के स्वरूप को उसने नही समझा इसलिए दुनिया को तवाह करके जब गया तो खाली हाथ ही गया। तब उसने यह कहावत चरितार्थ कर दी और उसने अपने साथियों से कहा कि जब जनाजा निकालो तो आप मेरे दोनो हाथ

के साथ साथ जीवन क्या है ? उसकी परिभाषा चल रही है। उसको आप अपने मन मे स्थायी रूप से बिठाइये तो आपकी हैरानी समाप्त हो जायेंगी और हैरानी समाप्त होने के साथ साथ धर्म ध्या की जागृति करते रहेगे ती आपका जीवन भी ऐने मगलमय प्रसग के साथ भगवान श्रेयास की प्रार्थना के अनुरूप बन सकेगा ।

लाल भवन
२७ जुलाई ७२





सोच समझ कर काम करने से मनुष्य अनेक सकटो से वच जाता है। अयत्न पूर्वक किया गया काम चाहे वह धर्म का ही क्यो न हो, उसमे अनिष्ट की सम्भावना रहती ही है । इसीलिए बुद्धिमानो ने कहा है कि '—पहिले सोचो, समझो, फिर करो ।

—जैनाचार्य श्री जवाहरलाल जी म०

× × × ×

पूरे निर्णय के साथ किया गया कार्य ही हितावह होता है ।

—महात्मा गाधी



ही बन गये हैं। चाहे कितना ही सुन्दर और ऊँचा किला हो लेकिन हवाई जहाज के जरिये एक बम उस पर फेक दिया जाए तो वह भस्मीभूत हो जाता है।

आज इन किलों की दशा क्या है? मनुष्य उस समय कितना दानव बन कर सत्ता और सम्पत्ति के लिए अपने जीवन को न्योछावर करने चला, लेकिन उसने इस प्रश्न को हल नही किया कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? उन्होने जीवन की आवश्यकता को महसूस नही की। जब ऐसे-ऐसे सत्ताधीशो की भी यह स्थिति है तो आज के मनुष्य की स्थिति उनके सन्मुख क्या है? आज भी करोडो की सम्पत्ति है, अरबो-खरबो की सपत्ति है, इससे भी क्या होने वाला है। इससे जीवन का क्या बनने वाला है? यदि जीवन को नही समझा गया तो इस अरबो-खरबो की सम्पत्ति से कुछ होने वाला नही है। यह सम्पत्ति व्यर्थ है। जिस समय आँख बन्द होगी उस समय अरबो की सम्पत्ति भी पास मे पडी रह जाएगी वह पुन जीवन नही दे सकती। इसी दृष्टि से मनुष्य के लिए कहा गया है कि—

'असखय जीविय मा पमायए'

जीवन असस्कृत है प्रमाद मत करो और जीवन के सच्चे स्वरूप को समझो। क्योकि वास्तविक जीवन के बिना सभी प्रपच व्यर्थ है। जीवन है तो सब कुछ है, जीवन नही है तो कुछ भी नही है। इस दृष्टि से आपको अपने जीवन का प्रश्न हल करने के लिए अपने आपको देखना पडेगा और अपने जीवन की कडियो को उस परिभाषा के साथ जोडना पडेगा। अपने जीवन की गुत्थियो को सुलझाना है तो जीवन मे आने वाले प्रसगो पर भी दृष्टिपात करना होगा। यह जीवन परिवार समाज व राष्ट्र से सम्बन्धित है अत तत्सम्बन्धी कर्तव्य भी हमारे सामने है आज परिवार समाज व राष्ट्र की क्या-क्या प्रमुख समस्याएं है। इन समस्याओं का

और अपना प्रकाश यहा विस्तार रूप से फैला दे। इस प्रकार वह व्यक्ति उस कमरे मे बैठकर सूर्य की प्रार्थना करे तो क्या सूर्य वहां कमरे मे जाकर प्रकाश देगा ? एक दिन की प्रार्थना से नही, दो दिन की प्रार्थना, दो दिन की ही नही तो १० महीनो तक भी वह प्रार्थना करे सारी जिन्दगी भर करे और कल्पना कर लीजिये कि ऐसी अनेक जिन्दगिया प्रार्थना करता रहे लेकिन फिर भी सूर्य उस कमरे मे जाकर प्रकाश देने वाला नही है। यदि उसको प्रकाश लेना है तो उसको यही कहा जाय कि जो तेरी आखो पर पट्टी बन्धी हुई है उस पट्टी को स्वय तू खोल और दरवाजा खोलकर बाहर आ। यदि वह सूर्य के मार्ग पर आगया तो सूर्य का प्रकाश विना प्रार्थना के ही उसे मिल जायगा। सूर्य की साधना करने की भी जरूरत नही है, लेकिन उसके मार्ग पर आने की आवश्यकता है। वह व्यक्ति अपने आख की पट्टी खोलकर दरवाजे के बाहर आयेगा और उसके मार्ग पर आ गया तो सूर्य की सहायता स्वत. उसको उपलब्ध हो जाती है। ठीक वैसे ही इस आत्मा को भगवान की सहायता के लिए प्रार्थना करने से पूर्व अपने नेत्रो की पट्टी को दूर करना है और हृदय के दरवाजो को खोलकर वीतराग देव का जो मार्ग है उस मार्ग को भलीभांति समझना है। यदि समझकर उस पर गमन करे तो प्रभु की सहायता स्वत ही उसको मिल सकती है, परमात्मा को यहाँ आने की आवश्यकता ही नही रहती। सूर्य के प्रकाश मे आकर के वह सूर्य का प्रकाश ले लेता है, तो सूर्य को उसके पास आने की जरूरत नही है। वैसे ही वासपूज्य भगवान की प्रार्थना आप इस तात्विक दृष्टि से करें, तो उनके मार्ग के अनुसार चले तो उनकी सहायता की स्थिति आपके हाथ मे आ जाती है।

भिखारी मत बनो

लेकिन फिर भी कुछ भाइयो के मन मे यह प्रश्न तो अवश्य

अगर हमें अपने जीवन की समस्याओ को हल करने के साथ साथ सामाजिक समस्याओ को भी हल करना है तो जीवन के वास्तविक स्वरूप को सामने रख कर ही हल करना होगा। यदि आप अपने यहा किसी भाई को काम पर रखते हैं तो उसकी तरफ भी ध्यान देना होगा कि यह भी मेरे लिए सहायक है। उसके जीवन की कीमत करके, उसको सम्मान देकर, भाई के नाते समान स्थिति मे देखने का अभ्यास करना होगा यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि यदि किसी से काम लेना है तो बडे प्रेम के साथ, स्नेह के साथ लिया जा सकता है तिरस्कार के साथ नही। अगर भेद-भाव करे तो उसका परिणाम कभी अच्छा नही आ सकता। इसी प्रसग मे मुझे बीकानेर के एक श्रावक मालूजी की बात याद आती है जिनके पास पैसा तो बहुत था लेकिन वे पैसे के पीछे अपने जीवन को नही भूल गए थे। वे बीकानेर के अन्दर रहते और जब कभी संतो का प्रसग होता, चाहे छोटे सत हो या बडे हो लेकिन नियमित रूप से व्याख्यान मे भी उपस्थित होते। बडे सतो के व्याख्यान मे जाय तो समझना चाहिए कि इसमें कोई विशेषता की बात नही है लेकिन छोटे सतो के व्याख्यान मे भी प्रतिदिन उपस्थित होना और बडे ध्यान से व्याख्यान श्रवण करना इन छोटे सतो को इज्जत देना है। और इनके साथ साथ व्याख्यान श्रवण करने के पश्चात् जब कि व्याख्यान समाप्ति पर सब लोग उठ जाते है तो अधिकाशत यह देखा जाता है कि अपने समान पक्ति वाले व्यक्ति से मिलते है। उन समान पक्ति वालो में भी बात होती है, जयजिनेन्द्र साहब, मुजरा साहब, पधारिए साहब। यह किन से करेंगे, समान पक्ति वाले से। जो पैसे वाले है वे पैसे वालो से ही मिलेंगे।

माया से माया मिले कर कर लम्बे हाथ।
तुलसीदास गरीब की कोई ना पूछे बात।

यह स्थिति भी क्या जीवन के अन्दर एक दर्द के रूप मे आगई

जीवन की उन समस्याओ या प्रश्नो को हल करने का प्रयास करें जिनके कि विना हम उस स्वरूप को नही पहिचान सकते हैं। यदि इस प्रकार क्रमिक प्रयास करते रहे तो हम प्रार्थना के माध्यम से उस सिद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकेंगे या अपने आप मे प्रकट कर सकेंगे जिसकी याचना हम सिद्ध प्रभु से कर रहे हैं।

सोचिए समझिए और फिर करिए

मैं कुछ जीवन के स्वरूप को समझाने का प्रयास कर रहा हूं। यह जीवन क्या है और जीवन की वह वास्तविक परिभाषा हमारे मन मस्तिष्क मे कैसे आए, हम कही जीवन के नाम पर अजीवन को तो जीवन नही समझ रहे हैं, हम कही आत्मा के नाम पर अनात्मा को तो आत्मा नही समझ बैठे हैं, भगवान के नाम पर अभगवान को तो भगवान नही समझ लिया गया है। इन बातो का ज्ञान आपको और हमको स्पष्ट रूप से कव होगा जव कि हम इसका चिन्तन ठीक तरह से करेंगे। जीवन की परिभाषा के साथ अपने वर्तमान जीवन को जानने की कोशिश करे क्योकि शास्त्रकारो ने मानव को उद्‌बोधन दिया है —"असंखयं जीविय मापमायए" यह जीवन असस्कारित है अत प्रमाद मत कर और इस प्रमाद की स्थिति से ऊपर उठकर उसे इस जीवन का सस्कार करके जीवन के स्वरूप को समझने का प्रयास करना है।

उस जीवन की परिभाषा मे अनेक व्यक्तियों के लक्षण आपके सम्मुख आ सकते हैं। इन अनेको मे से वास्तविक लक्षण पहचानने का उत्तरदायित्व वुद्धिमान व्यक्ति पर आता है और वुद्धिमान व्यक्ति ही इन अनेको मे से एक का निर्णय करता है। उसी दृष्टि से जीवन की एक परिभाषा आपके सामने रखी जा रही है, उसमे भी आप थोडा ध्यान दें और परिभाषा को समझने का प्रयास करें।

इसमे कहा गया है कि सम्यक् निर्णायकम् समतामय च यत् तज्

वैठते तो धनवानो की ओर विशेष ध्यान नही देते । उनकी दृष्टि मे गरीब साधर्मी नजर आ जाता तो उससे जाकर मिलते । जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर होता उनकी तरफ वढते, मुजरा करते, उनसे हाथ मिलाते और उनके कन्धे पर हाथ धर देते । वह तो फूला नही समाता अरे सेठ साहब, इतने बड़े आदमी और इतना धर्म करने वाले आज मेरे ऊपर इतने मेहरवान हो गए कि कन्धे पर हाथ धर दिया, इस प्रकार वह फूला नही समाता है । वे उनको एकान्त मे ले जाते और पूछते कि क्या हाल है । घर के सदस्यो की क्या दशा है । आपके जीवन की क्या परिस्थिति है । जब वे अन्तर्मन से एकान्त मे पूछते तो वह दिल खोल कर सेठ साहब के सामने अपनी परिस्थिति रखता कि सेठ साहब यह दशा है । एक कमाने वाला हूँ और दस खानेवाले हैं । सामाजिक कुरीतियो ने चूर-चूर कर दिया है, मैं पिसा जा रहा हूँ । समाज के अन्दर कोई सुनने वाला नही है । पैसे वालो के सामने आदमी के जीवन की कीमत नही है । मनुष्य मनुष्य को भिन्न समझता है । ऐसी दुर्दशा हो रही है क्या सुनावें । आप आज मेरे वरावरी के वन कर समान स्तर पर पूछ रहे हैं यह आपकी महानता है, पैसेवाले होकर आप मेरे जीवन की चिन्ता कर रहे हैं इसलिए मैंने भी आपके सामने सारी बातें खोल कर रख दी है । वे उसको सान्त्वना देते कि ये दिन और यह दशा भी रहने वाली नही है । मेरे घर पर वहुत छाछ होती है, गाय भैसे वहुत है तुम अपने बच्चो को छाछ लेने के लिए भेज दिया करो । तो वह कहता—सेठ साहब इतने रोज तो सकोच के कारण नही भेजा, गरीब आदमी ठहरे, कही वडे घर मे छाछ के लिए भी तिरस्कार हो जाय । धनी लोग गरीबो को छाछ देने मे भी आनाकानी करेगें और देंगे भी तो पानी मिला कर दे देंगे । अब तो छाछ का प्रसग भी नही रहा, छाछ आज तो देखने को भी कई स्थानो पर कम ही मिलती है लेकिन प्राचीन काल के अन्दर छाछ मुफ्त मे वाटी जाती थी । आज

के अन्दर बुद्धि भी मानी गई है वह प्रकृति का ही गुण है। उस बुद्धि मे सफेदी है और उसमे आत्मा का प्रतिबिम्ब पडता है। प्रतिबिम्ब पड़ने से आत्मा इस प्रकृति की सारी रचना को अपने आप समझ लेती है। और जब उसको यह खयाल हो जाता है कि यह सारा ससार एक प्रकृति का नाटक है और मैं इस कार्य से अलग हू ऐसा जब विवेक होता है तो वह प्रकृति से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार के विचारो की स्थिति के साथ युक्तियुक्त विचारो का चिन्तन किया जाय तो यह प्रश्न होता है कि प्रकृति के ऊपर पुरुष का प्रतिबिम्ब कैसे पडा ? समान प्रकृति का समान प्रकृति पर प्रतिबिम्ब पड़ सकता है। काच मे जो मनुष्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो काच पुद्गलो से बना है। और मनुष्य का शरीर भी पौदगलिक है अत उसमे प्रतिबिम्ब पडता है। उस दपर्ण मे वर्ण, गध रस और स्पर्श होता है और जिसका प्रतिबिम्ब पडता है वह भी वर्ण गध, रस और स्पर्श वाला होता है। दोनो समान धर्म वाले हैं इसलिए प्रतिबिम्ब पडता है, लेकिन प्रकृति वर्ण, गन्ध और स्पर्श वाली मानी जाती है और आत्मा वर्ण,गन्ध और स्पर्श रहित मानी जाती है तो आत्मा का प्रतिबिम्ब बुद्धि पर कैसे पड सकता है ? रूपी का प्रतिबिम्ब अरूपी पर नही पडता है। प्रतिबिम्ब रूप का रूप पर ही पडता है, लेकिन इसलिए यह कथन कि बुद्धि के अन्दर आत्मा का प्रतिबिम्ब पडता है और आत्मा मे भ्रान्ति पैदा होती है, यह युक्तिसगत नही है।

दूसरी बात यह है कि आत्मा यह सोचती है कि मेरा प्रतिबिम्ब इस पर पड रहा है और यह प्रकृति है, यह सोचने की स्थिति अगर उसमे आगई तो आत्मा परिणामी हो गई। फिर उसको कूटस्थ नित्य कैसे कहा जाय ? यदि यह कहा जाता है कि आत्मा विवेक ख्याती से सोचती है, तो विवेक ख्याती परिणामी के विना नही होती है। पहले आत्मा भ्रान्ति के साथ थी फिर विवेक ख्याती मिली तो विवेक के कारण भ्रान्तिरहित हुआ इसे ही तो परिणामी स्वभाव

अमुक सन्त आए हैं तो दासी को नीचे से ही सकेत कर देते, उसको पहले से ही सकेत समझा रखे थे, नीचे से आवाज देते, बाई महाराज आए है रोटी देना, फुलका वैराना। वह भी समझती थी कि सेठ साहब ने फुलका वैराने के लिए कहा है अर्थात् सेठ जी जब एक वचन मे फुलका वैराने के लिये कहते तो वह एक ही फुलका देती और जब वे बहुवचन मे फुलका वैराने के लिये कहते तो व दो या दो से अधिक फुलके देती। इस प्रकार उनकी मानस की यह भेद पूर्ण स्थिति थी। चाहे घर मे कितनी ही सामग्री हो, एक क्या कितने ही फुलके वैरा दे तो भी कोई फर्क पडने वाला नहीं है लेकिन फिर भी इस प्रकार की स्थिति इस युग मे चल रही है। आज जो साधु सन्तो के साथ भी ऐसा वर्ताव कर सकते है वे अपने सहधर्मी भाइयो के साथ क्या वर्ताव करेंगे। आज नौकर चाकरो के साथ क्या वर्ताव किया जा रहा है। मैं सुनता हूं, नौकर चाकरो के साथ समता का वर्ताव नही होता। वे काम बहुत करते है लेकिन फिर भी उनके साथ भेदभाव का वर्ताव होता है, उनके जीवन के साथ खिलवाड किया जाता है जिससे उनके मन के अन्दर विद्रोह की भावना पैदा होती है और जिसके भयकर परिणाम समाज के सामने आ रहे है।

बन्धुओ, यह स्थिति क्या है, क्या इससे जीवन का प्रश्न हल हो सकता है। आज भी इस धरातल पर इस प्रकार की चीजे चल रही है। मालूजी और दूसरे भी ऐसे सेठ साहूकार हुए है जो जीवन मे बहुत कुछ ऊँचे उठे है और जिन्होने समाज का और अपना उत्थान किया है। आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज साहब के सामने ऐसा प्रसग आया था। मालूजी आचार्यश्री के पास बैठे हुए थे, उस समय ऐसा जिक्र चल गया कि मालूजी आप तो पैसेवाले है फिर भी आपके सामने पैसे की इतनी कीमत नही, इन्सानियत को आप अधिक महत्व दे रहे है और जीवन का सही अकन कर रहे है।

राज्य, सत्ता और सम्पत्ति ही सब कुछ नही थे लेकिन जनता का जीवन महत्वपूर्ण कैसे रह सके इसको ध्यान में रख करके जनता के जीवन के लिए वे सब तरह के उपाय काम मे लेते और जनता के साथ स्नेह का व्यवहार करते, जनता के जीवन का विकास कैसे हो सकता है इस स्थिति को ध्यान मे रखते हुए कार्य किया करते। यहा महाराजा का सैद्धान्तिक दृष्टि से सकेत दिया है कि वे चरित्र बल से भी कैसे थे, क्योकि शासक जितना चरित्र सम्पन्न होता है वैसे ही शाष्य-जनता भी अपने जीवन को वैसा ही चरित्र निष्ठ बनाने का प्रयास करती है।

यथा राजा तथा प्रजा

राजा का तात्पर्य आप शासक से लीजिए। चाहे वह मुकुट बन्द राजा हो या अन्य। वे राजा तो अब चले गए हैं लेकिन आज भी जो शासक हैं उन शासको को आप राज्य को चलाने की स्थिति मे शासक के रूप मे राजा मान सकते हैं। उनके चरित्र का प्रभाव जनता पर पडता है, उनका चरित्र यदि उन्नत है, वे यदि अपने चरित्र को देश भक्ति की दृष्टि से ठीक समझते हैं, उनको राष्ट्रीय चरित्र का ख्याल है तो उनका जनता पर भी असर होगा। और यदि शासक की स्थिति बिगडी हुई है, शासक व्यक्तिगत चरित्र से गिर गया है अथवा राष्ट्रीय चरित्र उनमे नही है अथवा शासकीय दृष्टि से तटस्थता नही है, तो वे शासक भले ही कुछ समय के लिए शासक बने रहे, उनके सस्कारो का असर जनता पर आए बिना नही रह सकता है। कभी-कभी ऐसे प्रसग पर पूर्व स्थितियो का भी स्मरण हो आता है।

पूर्वकाल का एक शासक था उस शासक का वर्णन जब कभी कर्णगोचर होता है तो दिल के अन्दर अनुसधान जुड़ जाता है। वह शासक शिकार खेलने की दृष्टि से जगल मे निकला और बहुत दूर

उम्र बढ़ती है तो शरीर का भी विकास होता है। जब कन्या बड़ी हुई तो भक्त सोचने लगा कि किसके यहा इसका विवाह किया जाय। किसी के सामने वह विवाह का प्रस्ताव लेकर जाता है, तो पहले पैसे की बात होती है। पैसा कहाँ से लाये ? और कहा उसका विवाह करे ? आखिर मे उसने यही तय किया कि मेरी पुत्री को मैंने इतने सारे सस्कार दिये है तो बिना विवाह के वह ब्रह्मचारिणी का जीवन क्यो न बिताये। अगर उसका यह निर्णय हो जाय तो मेरा जीवन धन्य होगा। मैं इस पुत्री के लिए कोई सौदेबाजी नही करूगा। जैसी स्थिति है उस स्थिति मे कोई ईमानदारी से मेरे जीवन का अकन करेगा। यदि किसी ने मेरे जीवन को नही समझा तो मुझे परवाह नही। पिता यह सोचकर निश्चिन्त हो गया। एक रोज एक करोडपति सेठ घूमने की दृष्टि से बगीचे की ओर को निकला। उसका स्वभाव सुन्दर था उसके जीवन की स्थिति बड़ी पवित्र थी। वह यह जानता था "यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति।" उसने उस कन्या को देखा वह उस कन्या के गुणो का अकन करता है और उसके जीवन की कीमत करता है। यह सोचकर कि इस झोपडी मे कैसी स्थिति है। वह घूमना छोडकर झोपडी के पास पहुचा। उसने सारी परिस्थिति जानी, और परिस्थिति समझने के पश्चात् उसके मन मे आया कि इसके पिता के पास एक समय के भोजन का भी सग्रह नही है लेकिन इसका पिता जीवन के मूल्याकन को लेकर के चल रहा है और यह सत्ता और सम्पत्ति के पीछे दीवाना नही है। मैं सपदा का मालिक हू। मेरी दृष्टि मे अगर जीवन नही रहा और केवल सपदा रही तो मेरा जीवन भी बेकार है। इसलिए मुझे तो जीवन की कीमत करना है इस प्रकार विचार किया और मन मे दृढ विश्वास कर लिया कि इस गुणवान कन्या का सम्बन्ध मेरे पुत्र के साथ हो जाय तो सब प्रकार की सुनिधि प्राप्त हो जाय। इस प्रकार की भावना लेकर अपने स्थान पर पहुंचा और मुनीम से कहा कि उस झोपडी में रहने वाले

उनकी महारानी बसन्तसेना चौंसठ कलाओ मे निपुण थी। नारी जाति के जो श्रेष्ठ गुण हैं उन गुणो से वह अलकृत थी। उसके सौदर्य की जो कवि की कल्पना थी उसके अनुसार इन्द्र की इन्द्राणी, अप्सरा स्त्री की तरह थी और उसके साथ ही साथ आध्यात्मिक जीवन के साथ धर्मवृत्ति का भी सकेत है कि वह अपने धर्म की दृष्टि से जिस रूप मे चलती थी, उस धर्म की स्थिति का उनके जीवन पर वहुत बडा प्रभाव था, उससे वह जनता की प्रिय बनी हुई थी, उनका जीवन स्व-पर हित दृष्टि से चल रहा था, महाराजा और महारानी का जो दाम्पत्य जीवन का प्रसग आता है, वह दाम्पत्य जीवन भी केवल भौतिक दृष्टि का ही नही अपितु आध्यात्मिक दृष्टि का भी प्रतीक था और उसी जीवन के अन्दर उन्होने जीवन के मर्म को समझने का प्रयास किया। महारानी के सम्पर्क से महाराजा अपने जीवन की स्थिति को आगे वढाने मे कैसे सफल रहे हैं। निर्णायक रूप मे एक इन्सान की जीवनी आने वाली है, वह आत्मा किस रूप में आती है यह तो समय पर ही ज्ञात हो सकेगा। अभी तो मैंने इस चरित्र को प्रारम्भ करने से पहले थोडा सा सकेत दे दिया है कि शासक कैसे थे, महारानी और नागरिको की स्थिति क्या थी, इसका सक्षेप मे जिक्र कर दिया है, इसको आप ध्यान मे रखकर वर्तमान जीवन के साथ तुलना करें और उसके सम्बन्ध मे अपने जीवन को समझने का प्रयास करें तो आपका जीवन भी मगलमय होगा और निर्णायक शक्ति को समझने में कामयाव हो सकेंगे। इसी भावना से अभी तो इस विषय को यही रख कर समाप्त किए देता हू।

लाल भवन
२८ जुलाई ७२



क्या हालत होगी ? ऐसी हालत मे प्रश्न उत्पन्न होता है। "गरीबी हटाओ"। मगर यदि हमारा जीवन उस नारे के अनुरूप नही है तो गरीबी हटाने का अवसर जल्दी आना कठिन लगता है। तो उस कन्या के पिता ने भी यही कहा कि मेरे पास तो कुंकू कन्या हाजिर है, मेरे पास देने को एक फूटी कौडी भी नही है। साथ ही उसने यह भी कहा कि बरात लेकर आते हैं तो जिमाने के लिए भी मेरे पास कुछ नहीं है। मैं तो पान सुपारी भी नही दे सकता हू। आप इस तरह की स्थिति से गरीब कन्या के साथ विवाह के लिए आयें तो खुशी है। सेठ ने उसी ढग से विवाह किया। कुछ भी लेने की परवाह नही रखी। सेठ ने जीवन की कीमत की थी, पैसे की कीमत नही की। आज इस प्रकार का कोई भाई है जो जीवन की कीमत करे और पैसे की नही करे ? बन्धुओ, ऐसी दशा के अन्दर हम जीवन का अकन कहां करते हैं ? कैसी समाज की स्थिति बन रही है, आज गुणवान कन्याओ की स्थिति कैसी हो रही है। इसका गहराई मे चितन करना है। उस गरीब कन्या के घर मे जाने का जब प्रसग आया तो पिता ने विदाई देते हुए पुत्री को शिक्षा दी कि पुत्री मेरे पास पैसा तो नही है, लेकिन मै गुणो की शिक्षा देना चाहता हू। जब सुसराल जाय तो वहा जाने के बाद अपनी इस अवस्था को भूलना मत। सुसराल मे मेरी सपदा को पास मे रखना। जितने भी उस घर मे मनुष्य हो, चाहे नौकर चाकर हो उनके साथ में भाईचारे का बर्ताव करना, पैसे के मद मे किसी का तिरस्कार मत करना, पैसे के पीछे उनकी जिन्दगी की कीमत मत करना लेकिन जीवन के पीछे उनकी कीमत करना। उस कन्या ने हाथ जोड़कर कहा, ''पिता श्री, आपके वचन शिरोधार्य हैं। मुझे और संपदा नही चाहिए, आपकी सुशिक्षा रूपी सपदा ही चाहिए। उसने कहा, "पुत्री तू वहां जा रही है। वे लक्ष्मीपति लोग हैं उनकी दशा को देखकर वहां पर जो गरीब लोग आयें तो तिरस्कार मत करना, मीठे वचन बोलना, जीवन मे अपने

कुछ व्यक्ति थोडे जानकार रहते है। कुछ और अधिक जानकारी रखते हैं। पर आम जनता का विषय अभी तक उस जानकारी से परे है और वे जब अपने आपकी स्थिति को पहचान नही पाते तो उनको निर्मलता का स्वरूप, विमलनाथ का स्वरूप कैसे समझ मे आ सकता है ? उस विमलता को प्राप्त करने के लिये हमे प्रयास करना है और इस प्रश्न को हल करना है कि जीवन क्या है ? उस जीवन की परिभाषा मे आये हुए शब्दो को और उसके भाव को समझना है। उन शब्दो को और उनके अर्थ को ठीक तरह से समझ लेंगे तो हम अपने आपको भी पहचान लेंगे और जीवन की परिभाषा को भी व्यवस्थित रीति से समझ लेंगे।

उसके लिये जो आपके सामने परिभाषा आ रही है कि—

"सम्यग् निर्णायक समतामयं च यत् तज्जीवनम्।"

जो सम्यग् निर्णायक है समतामय है वह जीवन है। उस सम्यग् निर्णायक और समतामय की शक्ति को कभी आत्म रूप से पुकारा जाता है और कभी उसको निर्णायक रूप मे कहा जाता है।

लेकिन वह निर्णायक कैसे ?

मैं समझता हू—आत्म तत्व की मान्यता से शायद ही कोई इन्कार करे, लेकिन आत्मा का सही स्वरूप समझने मे अधिकाश भ्रान्तियुक्त हैं।

आत्मा मानी जा रही है पर कल मैंने बताया था कि आत्मा मानने वाले आत्मा को परिणामी नही मानते हैं तो वे वस्तुत आत्मा के स्वरूप को नही समझ रहे हैं, और एक दृष्टि से देखा जावे तो वे अन्धकार मे भटक रहे हैं, भ्रान्तियुक्त है। अन्धकार युक्त हैं, प्रकाश की किरणो से दूर है। जब उस आत्मा को परिणामी माना जावेगा तभी उसके साथ कर्त्तृत्व और भोक्तृत्व का सम्बन्ध जुडेगा।

एक स्वतंत्र तत्व "आत्मा"

आत्मा चैतन्यमय है। आत्मा परिणामी है। चैतन्यमय का तात्पर्य

जो वचपन की आदत है उस आदत के साथ मैं वरताव करूगी वह शायद आपको पसन्द आयेगा या नही आयेगा। क्या वरताव है तुम्हारा ? सासू जी ने पूछा ! वरताव क्या है, यही है कि मैं अपने पिता के यहा वचपन से वडी हुई हूँ, तव तक मैंने अतिथि-सत्कार को नही भुलाया है। कोई भी व्यक्ति आया है उसका स्वागत के साथ मे सत्कार किया है। दान देने की आदत भी है। जव आप मुझे तिजोरी की चावियां सौंप रही है, और घर का अधिकार सम्हला रही हैं तो कोई व्यक्ति आयेगा तो मेरा हाथ उदार रहेगा। उससे आपको नागवार तो नही गुजरेगा ? सासू जी को यह ख्याल आया और कहा कि दान देने लगी तो सारी सम्पदा चली जायेगी। उसने कहा कि सासूजीराज, आपने जीवन को नही समझा है और अपनी भौतिक सम्पदा को ही सव कुछ समझा है। सम्पदा यदि लुटा भी दूगी तो मेरा जीवन तो रहेगा, मुझे जीवन चाहिए सम्पदा नहीं चाहिए। सेठानी कहने लगी नहीं-नहीं मैं इन वातो मे आने वाली नही हू। इसके लिए थोडे ही चावियां सम्हला रही हू। किसी को देना मत, शर्माशर्मी उसने चावियां सम्हाल ली, लेकिन वह एक अच्छी चीज नही थी।

एक रोज कुछ ऐसा अवसर वना कि सासूजी कमरे में वैठी हुई अपने घर का कार्य कर रही थी। एक भिक्षुक साधू की पोशाक मे भिक्षा के लिये उपस्थित हुआ। उस भिक्षुक की दृष्टि उस मकान पर गई। करोड़पति का घर था। सासू का कथन भी उसके ध्यान मे था लेकिन पिछले जीवन मे उसने जो शिक्षा ली वह महत्वपूर्ण शिक्षा थी जो कि उसने अपने पिता के यहा प्राप्त की थी। उसके अनुसार उससे रहा नही गया, आखिर अन्दर जो मिष्ठान्न आदि सामग्री थी वह पर्याप्त मात्रा में लेकर साधू को दे दी। वह यह जानती थी कि साधू को जीने के लिए थोडा भोजन चाहिए और मर्यादित वस्त्र चाहिए। साधू पैसा लेता है तो वह साधु नही है

रूप मे आये हैं। आपकी आत्मा वर्तमान मे रूप को लेकर चल रही है लेकिन उसमे चलकर आने का जो विज्ञान है और चलकर आने का जो कर्तृत्व है वह आत्मा का स्वभाव है, वह आत्मा का कर्तृत्व है न कि शरीर का। शरीर अगर आत्मा रहित हो जाता है तो उसमें कर्तृत्व शक्ति नही होती। एक मुर्दा कलेवर किसी घर मे पडा हुआ है और उसे आवाज देकर कहा जाये कि अरे भाई उठो महाराज के व्याख्यान का टाइम हो गया है हम व्याख्यान मे चलें। क्या वह मुर्दा कलेवर आपके वाक्य को सुनेगा क्या वह उठकर चलने की तैयारी करेगा ? वह कभी तैयारी करने वाला नही है क्योकि उसके अन्दर जो कर्तृव्य शक्तिमान् आत्मा थी, जो क्रिया करने का निर्णायिक तत्व था वह तत्व उस शरीर को छोडकर अन्यत्र चला गया है। इसलिए मुर्दा शरीर इरादतन चलने की क्रिया नही कर सकता। लेकिन आप जो कि शरीर के साथ निर्णायक तत्व को लेकर बैठे हैं और किसी कार्य मे व्यस्त हैं, यदि कोई दलाल पुकारता है, दलाल भी कई तरह के होते है और धर्म के दलाल भी होते हैं तो धर्मदलाली करने वाले का भी स्वभाव होता है कि वह जाते-जाते पुकारता जाता है वह सोचता है कि मैं धर्म के लिए जा रहा हू तो चार व्यक्तियो को बुलाता हुआ क्यो न जाऊँ जिससे—मेरे कर्मों की भी निर्जरा हो और शुभ भावो के साथ मे दलाली भी कर लूँ और मुझे लाभ मिले और मेरे कहने से वह पहुच जाये तो उसको भी लाभ मिल जाये। इसलिये ऐसी भावना रखने वाला वह व्यक्तियो को पुकारता है कि बैठे क्या हो, यह ससार का काम तो रात और दिन चौवीसो घण्टे हो रहा है लेकिन चलो ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुछ आध्यात्मिक चर्चा ही सुनें, जीवन निर्माण की बातें सुनें। इस प्रकार वह प्रेरणा करता है और उसकी प्रेरणा को सुनकर वह कितना ही अपने कार्य मे व्यस्त हो लेकिन वह इस निर्णय पर पहुचता हैं कि वह व्यक्ति ठीक कहता है, मुझे घण्टे भर का समय

परम श्रद्धेय

आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

की

पीयूष-नदिणी प्रवचन गंगा

जन-मन के पातक धो डाले।



चम्पालाल सुभाषचन्द कोठारी

[illegible]

[illegible]

छोडकर घडे का रूप धारण कर लेता है इसलिए घडे का उपादान कार्य मिट्टी का ढेला है। लेकिन वह मिट्टी का ढेला स्वत घड़े के रूप मे परिणत नही होता, उसमे योग्यता रहने पर भी योग्य कर्तृत्व के बिना, व्यवस्थित कर्ता के बिना, विज्ञानवान कर्ता के बिना वह मिट्टी का ढेला घड़े का सुन्दर रूप धारण नही कर सकता अत वह कुम्भकार उसका निमित्त है, कर्त्ता है। निमित्त कर्ता कार्य का सम्पादन करके अपने आपको अलग रखता है, वह कार्य रूप मे परिणत नही होता उसमे व्यवस्थित विज्ञान की क्रिया होती है। कुम्भकार घडे का निर्माण करता है लेकिन घड़े को वनाकर, उसको सुन्दर आकार देकर अपने आपको वह सुरक्षित रखता है इसलिए कुम्भकार को निमित्तकर्ता माना गया। कर्ता दोनो आ रहे हैं।

किन्तु निमित्त कर्ता के विना भी घडा नही वनता और उपादान शक्ति के बिना भी नही बनता। दोनो का समन्वय होता है तभी घडा वनता है। पर फिर भी निमित्त और उपादान दोनो ही सब कुछ नही हैं। इसमे सहकारी कारण सामग्री भी रही हुई है। कुम्भकार कितना ही कलाकार और चतुर हो पर उसके पास अगर चाक न हो, उस चाक को घुमाने वाली डडी न हो और वहा उस घडे को घड़ने की प्रक्रिया के अन्य साधन न हो तो कुम्भकार भी घडे का निर्माण नही कर सकता और इसलिए उपादान और निमित्त के साथ सम्पूर्ण सहकारी कारण सामग्री का होना भी आवश्यक है। उपादान शक्ति प्रत्येक आत्मा मे है और निमित्त शक्ति सन्तजन, माता-पिता आदि के रूप मे आती है। सन्तो के चरणो में बैठकर मानव अपनी उपादान शक्ति का उपयोग करके अपनी आत्मा को उनके निमित्त से ऊपर उठा सकता है और उसमे कुछ प्रगति कर सकता है, पर साथ ही सम्पूर्ण कार्य कारण सामग्री का होना भी आवश्यक है, तभी वह अपनी प्रगति के सभी साधन जुटा सकता है।

साहव की अनुमति लेनी चाहिए। सेठ साहव को वुलवा लिये। सेठ साहव के आते ही उनको आडे हाथो लिया, कहने लगी देखा, मैंने पहले ही कहा था कि ऐसे घर की छोकरी हमारे घर के योग्य नही है। इसने तो सारे घर का दिवाला निकाल दिया, एक साधु को कुछ दान दिया और साथ ही साथ गुप्त वातें की। तो सेठजी ने कहा कि अव क्या करना चाहिए? सेठाणी कहने लगी कि इसको घर मे नही रखना चाहिए। सेठजी ने कहा कि इसको पीहर भेज दे। तो वोली कि पीहर भेज देंगे तो वहाँ वह सारी वातें खोल देगी और इससे इज्जत खत्म हो जाएगी। तो क्या करना? क्यो नही इसको समाप्त ही कर दें। सेठ ने कहा कि समाप्त करना तो मेरे हाथ की वात नही है। जव तक पुत्र सहयोग नही दे तव तक इस विषय मे अपन क्या कर सकते है। तो कहा पुत्र को भी वुला लिया जाए अपन तीनो एकमत हो जावें। पुत्र को वुलाने के लिए भेजा गया वह भी उपस्थित हो गया। सम्पूर्ण वृतान्त सुना तो वह भी आश्चर्य मे पड गया। कुछ कह नही पाया, मौन होकर खडा हो गया और मनन चिंतन करने लगा कि भगवन्! मेरे पर कौन-सा धर्म संकट आ गया, पतिव्रता के रूप मे इसको मैंने देखा, सीता सती की उपमा दी, और आज भी दे रहा हू ऐसी कन्या के विषय मे इस प्रकार की वात क्यो कर सम्भावित हो रही है। मैं प्रभु के चरणों में हाथ जोड कर इस विषय मे मार्ग दर्शन चाहता हू। वह कुछ समय के लिए स्थिर हुआ। कुछ चिंतन करके अपनी मातेश्वरी और पिताजी से कहा कि आप भी कुछ चिंतन करिए और इस वात की ताकीद मत करिए। आप इस वात का चिंतन करिए कि क्या वात है, किस तरह से यह वात वनी है और इसने जो कुछ कहा तो क्या कहा। सारी वात का निर्णय निकाले विना सहसा कदम नही उठाना है। तो उन्होंने कहा कि हमने सव कुछ निर्णय कर लिया है। तव पुत्र ने कहा कि मैं भी कह रहा हूँ, मुझे भी थोडी देर

थे और व्याख्यान श्रवण कर रहे थे। व्याख्यान श्रवण करते-करते उनको नीद आ गई। धर्मस्थान मे यह होना स्वाभाविक भी है क्योकि दिन भर दिमाग थका हुआ रहता है उसे यहा विश्रान्ति मिलती है।

या तो कोई मन को आह्लादित करने वाला विषय होता है, या मनोरजन का विषय होता है तो थोडा सावधान हो जाते हैं नही तो फिर सुस्ती आ जाती है या नीद आती है। कुछ देर तक तो सुनते हैं लेकिन फिर मस्तिष्क थक जाता है तो विश्राति लेने की स्थिति बनती है। तो वह भाई साहब रात दिन स्वार्थ के अन्दर तल्लीन रहकर दुकान से उठकर आये ही थे और सामायिक के अन्दर बैठे थे और बैठे बैठे उन्होंने स्वप्न देख लिया उसी तद्रा मे। स्वप्न देखते देखते वह झट से अपनी मुख वस्त्रिका को लेकर फाडते है और कहते है कि लो लो ले जाओ ४ आने मे ले जाओ। यह क्या था? स्वप्न में उन्होने देखा कि ग्राहक आया है इन्होंने अधिक पैसा, ८ आना मागा और ग्राहक ने कहा कि मैं तो ४ आने ही दूँगा और उसी स्वप्न मे निर्णय लिया कि ले जा ४ आने मे ही ले जा। इस तरह वह मुँह पत्ती को उठाकर फाडकर उसके हाथ मे दे देता है। जब वह जागता है तो चौंकता है। निद्रा भग हुई तो देखा कि मैं तो व्याख्यान मे बैठा हू और स्वप्न में व्यापार कर रहा हू। तो इसप्रकार के स्वप्न जिसको आते है उसका मन विमल नही होता,मलयुक्त होता है आत्मा के अन्दर ऐसी स्थिति बनती है लेकिन जिन व्यक्तियो की मलरहित स्थिति बनती है वे या तो ऐसे स्वप्न नहीं देखते और देखते भी है तो उनका कुछ न कुछ फल अवश्य होता है।

महारानी को रात्रि के अन्दर जो स्वप्न आया उसको देखकर वह विचार करने लगी

उस सुन्दर स्वप्न मे कमलो से भरा हुआ सरोवर देखकर महा रानी हर्ष विभोर हो गयी, और बैठकर चिन्तन करने लगी। ऐसा

पन्ना समिक्खए धम्म —उत्तराध्ययन

अपनी निर्मल बुद्धि-प्रज्ञा से धर्म की परीक्षा-समीक्षा करनी चाहिए।

---

६ | सम्यग् निर्णय कीजिए

श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिये हो,
प्रभुता त्यागी राजनी हो,
लीधो संजम भार।
निज आतम अनुभव थकी हो,
पाम्या पद अविकार। 'श्री'

बन्धुओ,

यह हम श्री सुविधिनाथ भगवान् की प्रार्थना कर रहे हैं। भगवान् के नाम का संकलन भी किस ढंग से बना है कि जिसमें यथार्थ अर्थ का द्योतन हो रहा है।

भगवान् सुविधि अथवा सु-विधि — इन शब्दों के साथ यदि सम्बन्ध जुड़ता है तो उनसे प्रभु के अनुरूप अर्थ का द्योतन होता है। सुविधि यानि 'सुष्ठु सुन्दराविधिर्यस्य स सुविधिः'। इसका दूसरा अर्थ है सुन्दर विधि, अगर यह सुन्दर विधि हमारे जीवन में प्रवेश कर जावे तो उस जीवन की तमाम समस्याएँ हल हो जावें। आज का मानव चल

आध्यात्मिक दृष्टि के महान् ज्ञाता गणधरो को भी भगवान् इस तरह से सम्बोधन करते हैं कि प्रमाद मत करो। क्योंकि तुम्हारा यह जीवन असंस्कृत है तो इसमे सहज ही साधारण साधु साध्वियो का चिन्तन तो मुखरित होना ही चाहिए। उन्हे अपने जीवन के लिये यह चिन्तन करना चाहिये कि हम साधु साध्वी के रूप में चल रहे हैं। हमने घर बार का त्याग किया है, परिवार, स्त्री, पुत्र, पति, सम्पत्ति सब को विधि के साथ वोसराया है, और इसके साथ ही साथ हम साधना के क्षेत्र मे प्रवेश करके चल रहे हैं, लेकिन जिस रोज हमने यह वेष ग्रहण किया उस दिन से कही हमारे मन मे लापरवाही के सस्कार तो नही आ गये हैं? हमने यह तो नही समझ लिया है कि अब हम मुनि बन गये हैं, पोशाक पहन ली है, अब तो हम भगवान् के तुल्य हो गये, कृत-कृत्य हो गये, अब हमे कुछ करना धरना नही है। इस तरह के सस्कार या विचार अगर साधु साध्वी के मन मे प्रवेश कर गये हो तो उन सस्कारो को भी असस्कृत रूप मे देखते हुए उनको भी निकालने का निरन्तर प्रयत्न करने का सम्बोधन वीतराग देव की वाणी मे स्पष्ट झलक रहा है।

मैं उचित सम्बोधन की बात को जितना ही अधिक ध्यान मे लाता हू उतना ही अधिक अन्तर मे अनेक तरह की तरगें उठती हैं। मस्तिष्क नाना रूपो मे चिन्तन करने को तत्पर हो जाता है। सोचता हू, कि वीतराग देव ने समुच्चय रूप मे यह जो सम्बोधन किया है उसमे गणधरो को भी सावधान किया तो साधारण साधु साध्वी और श्रावक-श्राविकाओ को भी सावधान होने की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है।

हम थोडा सा ज्ञान सम्पादन कर ले, उस ज्ञान के माध्यम से थोडा सा हमे सोचना आ जावे और हम अपने आपको कुछ औरो से ऊपर समझने लग जावें कि बस अब हमारे से बढकर ज्ञानी कोई

लेकर चल रहे हैं, अपने-अपने क्षत्र के अनुरूप, अपनी-अपनी शक्ति के साथ वे धार्मिक कार्य भी करते हैं। दान, शील, तप, भावना का प्रसग भी उपस्थित करते हैं,लेकिन दान देते समय कभी मन के अन्दर अहकार की प्रवृत्ति आ गयी, कि मैं बडा दानी हू, मेरे समान कौन दान दे सकता है ? मैं इतना उदार हू— अगर ये भावनायें प्रवेश कर गयी तो वह भले ही श्रावक की भूमिका मे हो, लेकिन वहां भी असस्कारित जीवन का प्रवेश हो गया। और उसका भी जीवन सस्कारित होने की दिशा मे आगे वढने से रुक गया।

शील की दृष्टि से भी शीलव्रत ग्रहण करता है कि वा ब्रह्मचर्य की मर्यादा करता है, लेकिन उसमे भी वड़ी सावधानी रखने की आवश्यकता है। उसमे भी यदि अहकारी वृत्ति का प्रवेश हो गया तो हम विधि से भटक जायगे क्योकि शील व्रत अत्यधिक महत्वपूर्ण वताया है उसमे अह आना स्वाभाविक है। तलवार की धार पर चलना सहज है लेकिन वीतराग देव की वताई विधि के साथ शील की धार पर चलना कठिन है। इसीलिए कभी कभी आध्यात्मिक रस में वहने वाले कवि कुछ कविताओ के प्रसग मे अपने अन्तर नाद को व्यक्त कर देते हैं—

"धार तलवार नी सोहिली
दोहिली चौदयां जिन तणी चरण सेवा"

ये चौदहवे भगवान की प्रार्थना की कडिया है। चौदहवे भगवान की बात कहो, नौवे भगवान की बात कहो या चौबीस तीर्थंकरो की बात कहो, उनका एक ही स्वर है और एक ही विधि है। उनका मौलिक दृष्टि से मौलिक तत्त्वो का एक ही तरह का विश्लेषण है। यह दूसरी बात है कि साधक युग को देखकर साधना के नियमो मे कुछ कमीवेशी या कुछ बढ़ोतरी कर सकते है, लेकिन मौलिक तत्त्वो के विषय मे कोई अन्तर नही आता। ऐसे उन परमात्मा के विधि विधान के ऊपर चलना और शीलव्रत की धार पर चलना यह तलवार की धार से भी कठिन

का काम भी चालू हो सकता है किन्तु उस तप के पीछे यदि किसी प्रकार की कामना चल पड़े तो वह कामना विधि की नही होगी। प्रभु के वचन हैं—

नो इह लोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा
नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा
नो कित्ति-वण्ण-सद्द सिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा
नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा

इह लोक के लिए तप न करें, परलोक के लिए भी तप न करे, यश-कीर्ति की कामना से भी तप न करें, किन्तु सिर्फ कर्म निर्जरा-आत्म शुद्धि के लिए तप करे।

मैं कभी कभी सुनता हूँ – इधर का मुझे पता नही, लेकिन मारवाड के अन्दर बोलते हैं कि महाराज धमक तेला किया। मैंने एक दिन धमक तेले की व्याख्या पूछी कि धमक तेला क्या है ? तो वे कहने लगे कि जो बहिन तेला करती है वह घर वालों को धमकाती है कि इतना रुपया दो तो पारणा करूँ, अमुक जेवर बनवाओ तो पारणा करूँ। इस तरह से रुपया माँगने के लिए अगर धमक तेला करते हैं तो वह तेला भगवान की विधि के अन्दर नही है।

इसी प्रकार "मैं यदि अधिक तप करूँ तो मुझे अधिक स्वर्गीय आनन्द मिलेगा" इस भावना से भी तप नही करे।

मेरी कीर्ति होगी, लोग मुझे धन्यवाद देंगे, चारों तरफ से तारीफ होगी- इस भावना से भी तप की स्थिति का प्रसंग उपस्थित नही करें अपने मन में भी ऐसी भावना न करें। यदि तपस्वी की तारीफ अन्य लोग कर रहे हैं तो वे अपने जीवन में सम्यग्दृष्टि जीवन के लक्षण का पालन कर रहे हैं वह तो उनका स्वभाव है तथा मौलिक दृष्टि से धन्यवाद देना उनके लिए आवश्यक है, लेकिन तप करने वाले को कोई कामना नहीं करनी चाहिए कि लोग मुझे धन्यवाद

जीवन वाले व्यक्ति है उनमे और आपमें क्या अन्तर रह जायेगा ? रात मे कितने जन्तु, कितने प्राणी और फिर बिजली के प्रकाश के कारण कितने पतगे इकट्ठे होते है किस तरह खाने में आते है। मैं समझता हूँ कि रात्रि भोजन करने वाले भाई भोजन की तरफ शायद ही ख्याल रखते हैं। हां ! प्राय ध्यान तो इधर उधर देखने मे रहता है और भोजन के साथ न मालूम कितने चलते फिरते जीवो को पेट मे डाल देते हैं, और उनका क्या परिणाम होता है, उससे असस्कारित जीवन का कुछ प्रदर्शन तो होता ही है लेकिन साथ ही साथ उसका वर्तमान जीवन भी खतरे मे पड सकता है। आज जितनी बीमारियां हो रही हैं और डाक्टरो को तरह तरह के इलाज करने की दृष्टि से सोचना पड़ रहा है इसके अनेक कारण हो सकते है लेकिन एक कारण यह भी है कि रात्रि भोजन के समय जहरीले जन्तुवो का पेट मे प्रवेश होने की सभावना रहती है और उससे अनेक रोगो की उत्पत्ति की भी सभावना रहती है। यदि वर्तमान जीवन को सुन्दरतम रखना चाहते हैं तो रात्रि भोजन के लिए बहुत ज्यादा ध्यान रखने की आवश्यकता है। जहाँ तक पूरे समाज का प्रश्न है उसकी दृष्टि से दिगम्बर समाज के भाइयो के अन्दर यह सस्कार ज्यादा सुनने मे आते है। उनमे रात्रि भोजन का प्रसग प्रायः नही पाया जाता है। वहां उन्हे इस विषय के प्रारम्भ मे ही सस्कार दिये जाते हैं।

छोटे बच्चे भी इसका ख्याल रखते है। जब कि मैं छोटा था, स्कूल मे पढ़ रहा था, उस समय एक पाटनी गोत्र का विद्यार्थी मेरे साथ पढ़ता था। शुरू मे सूर्यास्त होने के भय से वह स्कूल से जल्दी छुट्टी लेकर भाग कर घर जाने लगा तब मैंने उससे पूछा कि इतनी जल्दी छुट्टी लेकर घर क्यो जा रहे हो ? उसने उत्तर दिया कि भोजन करने के लिये जा रहा हूँ। फिर मैंने पूछा, अभी क्यों जा रहे हो, अभी तो स्कूल का समय है। उसने उत्तर दिया—दिन

के तौर पर ही सही, १२ महीने के लिये रात्रि भोजन नहीं करेंगे ऐसी प्रतिज्ञा करने को तत्पर होगे ? अगर आप ऐसा कर लेते हैं तो चातुर्मास काल मे बीच-बीच मे आवश्यकता हो तो मुझे यह कहने का भी बड़ा अच्छा अवसर मिल जावेगा कि जयपुर के भाई बहुत जागृत हैं उन्होंने एक वर्ष के लिये ही सही, रात्रि भोजन न करने की प्रतिज्ञा कर ली है। फिर भी कदाचित किसी को कुछ कमजोरी अनुभव हो रही हो तो, कम से कम आज चातुर्मास के प्रारम्भ का दिवस है, आज से लेकर चातुर्मास समाप्ति काल तक के लिये तो रात्रि भोजन नही करना, ऐसी प्रतिज्ञा आप करेंगे, क्या ऐसा विश्वास रक्खू ?

तो मैं दानशील तप और भावना की बात कह रहा था। चार महीनो मे आप ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें, रात्रि भोजन का त्याग करें, किसी भी प्राणी को दुख न दे, कालाबाजारी न करें। झूठ न बोलें, किसी प्रकार की चोरी न करें और इन चार महीनो मे कुछ परिग्रह ममत्व को भी कम करें। इस तरह से अगर कुल मिलाकर १८ ही पापो के त्याग की भी भावना जगेगी तो इस चातुर्मास का रूप कुछ और ही बन जावेगा। यह संकेत चतुर्विध संघ के अंग के रूप मे आपको मिल रहा है। यह संकेत केवल मेरा ही नही है, भगवान महावीर का है। भगवान् ने स्पष्ट संकेत दिया है :—

असंखयं जीविय मा पमायए।

मैं भी निरन्तर यही बात कहता आ रहा हूं, बार-बार दोहराता आ रहा हूं कि तुम्हारा जीवन, असंस्कृत है, इस असंस्कृत जीवन मे प्रमाद मत करो। इस स्थिति को हटाने के लिये यह संकेत दिया जा रहा है, इस स्थिति को आप स्वयं अपनी बुद्धिमत्ता से चिन्तन करके, इन संस्कारों को परिमार्जित करेंगे तो जीवन की स्थिति को समझने का अवधान कर पायेंगे।

उसके सामने भी यह घटना रखी। पुत्र भी असमंजस में पड़ गया। वह सोचने लगा कि मेरी माता क्या कह रही है ? जिसको मैंने इतने दिनों से समझा है, जिसके जीवन को मैंने परखा है। आज वह मेरी धर्मपत्नी क्या इस प्रकार बुरे आचरण वाली बन सकती है ? यह मेरी समझ मे नही आता। लेकिन उधर मां जिस पर मै श्रद्धा रखता हूं तो क्या वह झूठ बोल सकती है ? मैंने इस माता की कुक्षी से जन्म लिया है, इसी माता की गोदी मे पला, पोसा और बडा हुआ हूं। माता ने मुझे हर तरह की अच्छी शिक्षा दी और आज तक मै माता का बडा आदर करता आया हूं। आज क्या वह माता मुझे धोखा दे सकती है ? या झूठी बात कह सकती है ? यह भी बात मेरी समझ मे नही आती। वह किं कर्त्तव्य विमूढ़ सा हो गया। कुछ सोच नही पा रहा था। कुछ क्षण मौन खड़ा रहा।

तब माता ने अपने पतिदेव को सम्बोधित किया कि सेठजी ! अपने पुत्र का मुंह खुलवाइये। यह मौन क्यो खडा है ?

सेठ ने पुत्र को सम्बोधन किया : गोविन्द, क्या बात है ?

किस उलझन मे उलझ गया है ? तुम्हारी माता ने जो निर्णय लिया है वह निर्णय ठीक है अतः तू उसके अनुसार काम करने को तत्पर है कि नही ?

पुत्र कहने लगा—पिताश्री, मैंने आज दिन तक आपकी आज्ञा शिरोधार्य की है लेकिन आज मेरे मन मे न मालूम किस प्रकार की उलझन पैदा हो गई है ? उसको सुलझा नही पा रहा हूं। किसी निर्णय और निश्चय पर नही पहुँच पा रहा हूँ, और बिना निर्णय के मै कैसे क्या करूं ? आप आज्ञा दे रहे हैं और इसके अन्दर सहमति प्रकट करूं यह भी मेरे गले नही उतर रही है, मेरा दिल नही मान रहा है और मैं इन्कार करूं कि आपकी पुत्रवधू ऐसा नही कर सकती तो भी मेरा दिल नहीं मानता ? अब कैसे करूं ? और क्या करूं ? आप ही बताइये।

सभी का कर्तव्य तो यह था कि इसका निर्णय करते। सासूजी खुले रूप से तत्काल बहू से पूछती कि तुम बताओ साधु के साथ तुमने सांकेतिक शब्दो मे क्या बात की? क्या एक गया और क्या दो गया और क्या तीन गया?। इसका खुलासा करो। अगर सासू यह खुलासा उसी समय माग लेती तो इस तरह का उपद्रव नही होता। पर उस सासूजी की बुद्धि गुस्से में और दूसरी स्थिति मे परिणत हो जाने से निर्णय न कर पाई। उसका जीवन असंस्कारित था। जिसके मस्तिष्क मे कुछ सस्कार आते है। किसी की कभी बात हो तो खुले दिल से पूछ लेते है, निर्णय कर लेते है। कोई बात किसी भी रूप मे हो, किसी भी व्यक्ति ने किसी भी रूप मे कही हो, चाहे पक्ष मे कही हो या विपक्ष मे चाहे इस विषय मे अमुक के मार्फत बात आई हो, पर निर्णायक बुद्धि रखने वाले प्रामाणिक व्यक्ति का काम होता है कि वह उसका खुलासा सम्बन्धित व्यक्ति से सीधे पूछ कर ले। अमुक व्यक्ति जिसकी मार्फत बात आई हो वह कितना ही प्रामाणिक हो उसकी बात पर भी ध्यान न देकर सीधे उसी व्यक्ति से स्पष्टीकरण कर लेते है कि क्या आपने अमुक बात मेरे बारे मे कही है?

जिससे पूछा जाय उसका भी कर्तव्य होता है कि वह भी बिल्कुल निःसंकोच भाव से स्पष्ट कहे, नग्न सत्य के रूप मे कहे तो दोनों सस्कारित रहे जा सकते है लेकिन ऐसा नही होता है और असंस्कार के वशीभूत होकर और विक्षेप करने वालो के साथ ऐसी भावना पैदा कर लेते है जिससे रात दिन कर्मबन्धन होता रहे—यह मेरा विरोधी है, यह मेरे प्रति ऐसी भावना रखता है, चाहे रखे या नही रखे जिसके ऊपर घृणा हो जाती है, वह किसी से बात कर रहा हो तो भी वहाँ ऐसा लगता है कि यह मेरे ही विषय मे बात कर रहा है। इस प्रकार इन बातो मे पड़कर अपने जीवन को असंस्कार से असंस्कारित दशा में ले जाता है लेकिन जीवन का परिमार्जन नहीं कर पाता

परिवार के सदस्यो ने कहा कि पिताजी जब आप हमको लापसी जीमने के लिए रोक रहे हैं तो इस गाव के अन्दर हमारे अन्य सबधी भी बहुत है, वे चले जायेंगे तो मर जायेंगे इसलिए आपको आज्ञा हो तो उनको भी बता आयें। तो सेठ ने अनुमति दे दी। बाल-बच्चे भागे और कहा कि लापसी जहर है इसलिए जीमने मत जाना। वे परिवार वाले रुके उन्होंने सोचा कि हमारे और भी तो परिवार हैं, तो उन्होने अन्यो को सूचित किया। इस तरह से सारे शहर मे सन्नाटा छा गया और जो सबके सब तैयार हुए वे सबके सब रुक गये। बेचारे जिस व्यक्ति ने सारा माल बनवाया वह व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यो को लेकर द्वार-द्वार घूमता है और लोगो से कहता है पधारिये,पधारिये तो कोई कुछ नही कहता सिर्फ हा साहब, हां साहब कह देते है और इसके अलावा कुछ नही कहते और जाता भी कोई नही। इस प्रकार वे परिवार के सदस्य हैरान हो गए और सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। पचायत बुलाई और कहा कि देखिए साहब आपके कहने से सब तैयारी की, सब कुछ माल तैयार हो गया परन्तु कोई नही आ रहा है और कोई उत्तर भी नही दे रहा है सब कह रहे हैं हा साहब, हा साहब—इसका निर्णय तो कीजिये कि जीमने के लिए क्यो नही आ रहे है? तो पच भी एकत्रित हो गये लेकिन किसी भी पंच मे पूरा निर्णय करने की शक्ति नही। पच भी कई तरह के होते है। आजकल तो पचायतें प्रायः समाप्त हो गयी हैं। गावो मे कही-कही बाकी रही हैं। आचार्य श्री कहते थे कि निर्णय करने वाले पच भी कई तरह के होते हैं। जो सभी सही निर्णायक नही होते। जो एक तरफा निर्णय करते है। तो ये सभी एकत्रित पच सोचे जा रहे हैं निर्णय कोई नही कर पा रहा है, बेचारा वह माल बनाने वाला हैरान हो रहा है। किसी ने कोई निर्णय नही दिया और सारे इधर-उधर देख रहे थे। उनमें मे एक निर्णायक व्यक्ति निकला और उसने सच्चाई के साथ कहा कि

हम तो नही जीमते। पचों ने कहा कि बात तो बिगडी लेकिन यह मालूम करना चाहिए कि यह बात कहां से उठी। तो फिर इसकी खोज करने के लिए सोचा और एक दूसरे से पूछताछ करने लगे तो सगे सम्बन्धियो से पता लगाते लगाते वहा तक पहुँचे कि सेठजी ने कहा था कि लापसी मे जहर है। सेठ ने कहा कि देखिये मैं गलत नही कहता और मुझे तो वैद्यराज जी कहा। मैने उनसे पूछा कि मै लापसी खा लूँ तो उन्होने कहा कि लापसी मे तो जहर है। वहां पर वैद्यराज जी को बुलाया गया और पचो ने सोचा कि यदि जहर की पुडिया जायेगी तो वैद्यराज जी के यहा से ही जायेगी, उन्हे बुलाकर पूछें कि आपके यहा से कितने जहर की पुडिया गयी। वैद्यराज जी ने कहा कि मेरे यहा से तो एक भी जहर की पुडियां नही गई। उनसे कहा गया कि फिर आपने कैसे कहा कि लापसी मे जहर है। वैद्यराज ने कहा सेठजी को तो मैने दवा दे रखी थी और उसके लिए पथ्य बता रखा था कि तेल और गुड़ नहीं खाना। इसलिए यह लापसी सेठजी के लिए जहर है, लेकिन गाव वालों के लिए जहर थोड़े ही है। पचो ने कहा कि जब आपके यहा से पुडिया नही गयी और आपने पथ्य की दृष्टि से बताया तो फिर आप ही इस लापसी को पहले जीम लो। वैद्यराज जी निर्भय थे और निश्चित थे, वे आगे चले और जाकर अच्छी तरह से लापसी खा ली और बैठ गये, दो तीन घन्टे कुछ नही हुआ तो सारे गाव वाले बिना बुलाये जीम गये।

बन्धुओ, देखिये किसी भी चीज का निर्णय किये बिना किसी बात में पड़ जाय तो लापसी में जहर के समान हो जाता है और इस प्रकार अनेक बन्धु कर्मबन्ध करके अपने जीवन को न जाने कैसे कुसंस्कारित बना लेते हैं। जीवन को सुसंस्कारित करने के लिये चातुर्मास का काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इन चार महीनो मे वस्तु स्थिति का निर्णय करें। निर्णय अनेकों चीजों का होता है। सब चीजों का निर्णय सम्यग् दृष्टि से कर लेते हैं तो यहां वास्तविक विकास का प्रसंग हो आ जायेगा।

उतना ही योगदान है। इससे सरलता से समझकर हर भाई बहन अपने जीवन की तुलना उन चरितनायको से कर सकता है। इसी प्रसग से सोच रहा हू कि महाभारत के बीच का प्रसग कथा रूप में कहता चलूं। इसमे कमलसेन नामक एक तरुण का जीवन है। उसमे उस तरुण ने कैसी निष्ठा रखी है उसने अपना-जीवन कैसा बनाया, और जीवन के प्रश्न को किस तरह से हल किया, इसका दिग्दर्शन होगा। इसमे कुछ माताओ का भी प्रसग आता है जो सती रूप मे प्रत्यापित हुई हैं। समय का अवकाश नही है पर उसकी एक कडी उच्चारण के रूप मे रख ही देता हू क्योकि वह आन्तरिक जीवन का परिमार्जन करने वाली है।

निज गुण सुखकामी, ध्याता है आत्म राम को।

कहा है निज गुण सुखकामी, जो अपने सुख की कामना रखता है अर्थात् अपने जीवन को समझने की भावना रखता है। उसे विकसित रूप मे देखना चाहता है और जीवन की कलुषताओ का उन्मूलन करके जीवन के वास्तविक रूप को निखारना चाहता है। वह आत्माराम मे रमण करता है। आत्माराम के ध्येय के बिना जीवन निर्णायक समतामय नही बन सकता है। इसलिये इस मगलाचरण की कड़ी के साथ भी थोड़ा सम्बध जोडें।

तीन व्यक्ति माता-पिता और पुत्र तीनो अपने विचारो में मस्त हो रहे हैं और बहन को खतम करने का विचार कर रहे हैं। वह भी कन्या गरीब घराने से निकल कर कोटिपति के घर पहुची है। पर उसकी वह तमन्ना नही है कि सत्ता और सम्पत्ति मे डूबी रहे। वह तो यह समझती है कि यह सत्ता और सम्पत्ति और साहिबी मेरे जीवन के लिए महत्वपूर्ण नही है मेरे जीवन के लिये महत्वपूर्ण है तो जीवन का स्वरूप है। मैं अपने उस सही स्वरूप को कैसे प्राप्त करूं और कैसे समझूं इस चिन्तन को लेकर वह अपने हाल मे मस्त है।

इन चार प्राणियो के बीच मे क्या प्रसंग बनता है, और

परम श्रद्धेय, प्रातः स्मरणीय

आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म. सा.

के

ज्ञान-भक्ति एवं वैराग्य रस में ओत-प्रोत

'पावस-प्रवचन'

हम सबके जीवन में नया प्रकाश देने वाले हों।

□

दीपचन्द उत्तमचन्द

(कपड़े के व्यापारी)

गंगानगर (बीकानेर)

ण याणंति अप्पणो वि किन्नु अण्णेसिं।

—आ० चू० १।३।३

जो अपने को ही नही जानता वह दूसरो को क्या जानेगा।

---

७ | आत्मिक शान्ति

"श्री दृढ़ रथ" नृप तो पिता, "नन्दा" थारी माय।
रोम-रोम प्रभु मो भणी, शीतल नाम सुहाय॥
जय-जय जिन त्रिभुवन धणी, करुणा निधि करतार।
सेव्या सुरतरु जेहवो, वांछित सुख दातार॥

यह प्रभु शीतलनाथ परमात्मा की प्रार्थना है। प्रतिदिन प्रभु का नाम विभिन्न रूपो मे आ रहा है। आज प्रभु शीतलनाथ का नाम आया। आज ससार को शीतलता की आवश्यकता है। जब तक जीवन मे शीतलता का सचार नही होता है, तब तक मानव का मन सतप्त रहता है। कितना ही वैभव मिल जाय, कितने ही अधिकार प्राप्त हो जाय, कितनी ही ऋद्धियां मिल जाय, लेकिन इन सबके मिलने पर भी शान्ति न मिले, शीतलता न आये तो उस व्यक्ति का जीवन, जीवन नही रहता। वह मनुष्य भले ही कहलाता हो, वह अपनी स्थिति मे कुछ मानवीय कार्य भी करता हो लेकिन आन्तरिक जीवन का जो आनन्द है, वह उसे नही ले पाता। इसलिए यहा शीतलनाथ के रूप की उपासना का सकेत दिया गया है। हम

व्यक्ति, एक नौकर, दो नौकर चन्दन घिसेंगे तो कितना घिसेंगे ? अत हम सबको मिल करके यह कार्य करना है- ऐसा सोच कर महाराणिया भी चन्दन घिसने मे जुट गई। जब वे चन्दन घिसने लगी तो उनके हाथ के ककणो की आवाज होने लगी। वह आवाज महाराजा को अच्छी नही लगी। महाराज कहने लगे। मेरे इस दाह ज्वर के अन्दर यह आवाज नमक का काम कर रही है, पीडा और भी तेज हो रही है, मेरी अशाति बढ रही है, हालाकि मन पर उसका असर नहीं होता, लेकिन शरीर पर असर हो रहा है। चतुर व्यक्तियो ने राणियो को सूचना दी। उन्होने सब ककण निकाल लिये, सौभाग्य की दृष्टि मे केवल एक-एक ही ककण रखा। फिर वे चन्दन घिसने लगी। चन्दन घिसा गया, कुछ लेप हुआ तो महाराजा को शाति मिली। महाराजा ने पूछा—यह आवाज किसकी थी और अब बन्द कैसे हो गई ? तब उनको यह बात बताई गई, कि रानियो के हाथ मे जो ककण थे, वे आपस मे टकराते थे, इसलिए आवाज हो रही थी। बाद मे एक ही ककण रख लिया गया और बाकी के सब उतार दिये गये इसलिए आवाज बन्द हो गई। महाराजा उस समय विचार करते है, चिंतन करते है, यह बावना चन्दन मेरे शरीर पर लगाया जा रहा है, लेकिन मुझे इस चन्दन के लेप के साथ-साथ सोचना यह है कि यह दाह ज्वर व्याधि आई कहा से ? किसी बाहर के व्यक्ति ने मेरे शरीर के ऊपर कोई दाह ज्वर की शक्ति छोड दी ? ऐसा नही हुआ है। अनादिकाल से लगे हुए कर्मो के सयोग से यह व्याधि हुई है। कर्मो के कारण ससार अवस्था मे, परिवार, विषय और कषाय का जब तक सयोग रहता है तब तक ये सभी बीमारिया है, और इसी से यह दाह ज्वर हो रहा है। आज रानियो के हाथ से ककण निकाल दिये गये तो खट खट बन्द हो गई। जब बहुत थे तब खट खट होती रहती थी, एक रह गया तब खटपट का सवाल ही नही

आ रही है। रावण इस प्रकार के भव्य भवन में रह कर रावण जैसे व्यक्ति भी जब सतप्त हो सके है, तो आप सोचिये कि ससार के मनुष्यो की क्या दशा होगी,आज दुनिया में अशाति है,गर्मी है,ताप है—इसके कारण को सोचा जाय तो विषय कषाय की ज्वाला ही उसका कारण परिलक्षित होगा। यह भयकर ज्वाला है, इस ज्वाला से छुटकारा पाना सहज काम नही है। इससे छुटकारा तभी हो सकता है, जब इन्सान आत्मिक तत्व के विषय में स्थाई रूप से सोचे, और समझे—मेरी आत्मा अखण्ड है, मेरी आत्मा इन विषय कषायों से परे है—इस प्रकार के निर्णय की एक निर्णायक शक्ति जिस व्यक्ति मे आती है वह विषय कषाय की ज्वाला से ऊपर उठ सकता है। यह शक्ति कब आयेगी ? जब जीवन का निर्णय करेगा, जीवन का स्वरूप समझेगा।

समग्र परिभाषा

मैंने कल जीवन की परिभाषा की थी, एक परिभाषा पहले भी रखी थी, जहां प्रश्न उठा था—कि जीवनम् ? जीवन क्या है ? इसको समझने का प्रयास करना है। जो जीवन का स्वरूप है, जीवन की परिभाषा है, वह परिभाषा इस प्रकार है।

सम्यग् निर्णायकं समता मयञ्च यत् तज्जीवनम्

जो सम्यक् निर्णायक है, जो समतामय है—वही जीवन है। सम्यक् निर्णय किस बात का ? इस विषय की कल बात अधूरी रह गई थी, लेकिन निर्णय करना आवश्यक है। जब तक मन मे सम्यग् निर्णय नहीं होगा तब तक आधि व्याधि, बाहरी ताप नहीं हटेगा। जिन्होंने आत्म-निर्णय किया, संसार का निर्णय किया—वे निर्णय करके सत्य मार्ग पर आगे बढ़े। आज के मानव को जीवन नाथ भगवान के चरणों मे बैठ कर जीवन का निर्णय करना है, जीवन को समझना है। जीवन वह है, जो सम्यक् का निर्णायक हो। निर्णायक

क्या शरीर निर्णायक है ?

अपनी निर्णायक शक्ति का पता लगाना बड़ा ही कठिन काम है। अपना ज्ञान होने पर ही अपने निर्णायक का विश्वास जागता है। अपना ज्ञान और अपना निर्णायक, शाब्दिक दृष्टि से पृथक-२ दो शब्द अवश्य हैं। किन्तु जहा लक्ष्य का समाधान होता है दोनों एक ही भाव के प्रतीक हो जाते है। इस विषय मे अनेक लोगो के अनेक विचार हैं अनेक धारणाएँ है। कुछ यह कहते हैं कि—आपके सामने घडी है। वह टाइम बताती है। लेकिन जब इसके पुर्जे अलग-अलग थे तब तक यह घड़ी बोलती नही थी, आवाज नहीं देती थी जैसे ही पुर्जे एकत्रित हो गये वैसे ही इसमे खटराट की आवाज आने लगी, वह बोलने लगी, अब घड़ी इतना टाइम बता रही है। जैसे घड़ी मे टाइम देने की स्थिति आ गई वैसे ही शरीर मे पाच तत्वो के मिलने से आवाज आ गई। यह घड़ी इस कथन की पुष्टि करती है। इस प्रकार के चिन्तन वाले कुछ भारतीय भी हैं और कुछ पाश्चात्य विद्वान भी है। जो जडवादी है। उनमे थैलिस और एनाक्सीमान्डर, तथा ऐनाक्सीमेनेश आदि मुख्य हैं। ये अपनी मान्यता की दृष्टि से यह चिन्तन करते है। इस विषय मे आपको भी चिन्तन करना है क्या इन जड़वादियों का जो कथन है वह वस्तुतः सत्य है? आपके सामने भी ऐसे कुछ विचारक व्यक्ति आ सकते है और कुछ ऐसे सम्भावित प्रश्न खड़े कर सकते है। यदि आप अपने जीवन के निर्णायक स्वरूप को समझे हुए नही होंगे तो आप उनका उत्तर नहीं दे पायेंगे और आप लड़खड़ा जायेंगे। इस तरह आप शान्ति के मार्ग से भटककर मानसिक अशान्ति मे उलझ जायेंगे। निर्णायक शक्ति शरीर तो नहीं है यह जो कहा है कि "शरीर ही निर्णायक" इस पर कोई विचारवान् व्यक्ति पूछ सकता है यदि शरीर ही निर्णायक है तो मुर्दा शरीर भी निर्णय करेगा। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसकी निर्णय करने की शक्ति कहा चली

कोई कार्यवाही नही बनती है—घडी साज के बिना उसमें आवाज नही होती। घडी साज समझता है कि यह घडी है। घडी के पुर्जे और काटे को वह यथास्थान रखता है। यह निर्णायक शक्ति उस घडी से भिन्न उस घडीसाज मे है इसलिये निर्णायक अलग है। इसी प्रकार घडी के समान यह शरीर बना है लेकिन इसका बनाने वाला घडी साज की तरह वह निर्णायक आत्मा है। वह इस शरीर से भिन्न है। और वर्तमान मे वह दूध पानी की तरह शरीर से ओत-प्रोत होकर चल रहा है। अत शरीर मेव निर्णायकम् यह सिद्धान्त नितान्त हास्यास्पद है। साथ ही दूसरा जो यह कहा गया था कि "प्रत्यक्ष ही प्रमाण है" उनसे मैं पूछना चाहूगा कि आपके १० पीढी के दादाजी थे कि नही ? प्रत्यक्ष तो है नही, तथा आपने उन्हे आखो से भी नही देखा है फिर आप कैसे मानते है कि हमारे दादाजी थे, किन्तु आपको बाध्य होकर अनुमान से ऐसा मानना ही पडता है। उस समय आप प्रत्यक्ष पर ही स्थिर नही रह सकेंगे। आप यह कहेगे कि वर्तमान मे जो हम अपना शरीर देख रहे है इस शरीर का सम्बन्ध हमारे पिता के साथ है, और वे हमारे सामने मौजूद है इससे स्पष्ट है कि पिताजी के पिताजी भी थे और उससे आगे उनके भी पिताजी थे। इस प्रकार दादाजी तक सम्बन्ध का तारतम्य जुड जाता है। यह अनुमान का विषय है। अब आप वैज्ञानिक स्थिति मे चिन्तन करते है तो वैज्ञानिक भी जहां अदृष्ट की खोज करते है तो वे भी अनुमान का सहारा लेते है। वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि इस विश्व मे कोई ऐसी शक्ति अवश्य है जो सृष्टि के लिये रहस्य बनी हुई है, जिसे खोजना है, इसके लिए उनकी दौड धूप चल रही है और अनेक वैज्ञानिक उस रहस्य को जानने के लिये अपनी जिन्दगी तक समाप्त कर चुके है। जब कही जाकर कोई नया आविष्कार होता है, अत विज्ञान भी अनुमान के आधार पर ही नई-नई खोज करता है। इसलिये प्रत्यक्ष जो इन्द्रियों का विषय है वह इन्द्रियों तक ही सीमित है। इन्द्रियों के

दीखते हैं, उनका कहना है कि पानी जड है, उसमें जीव कहा हैं। नास्तिक व्यक्ति के साथ कुछ विवेकी व्यक्ति होते हैं, जो आस्तिक कहलाते है वे भी कह देते है, हां साहब ? यह तो गप्प ही है, हम इसे नही मानते हैं। वह कहते है, शास्त्र मे यदि कोई बात गलत आ गई है तो उसको कैसे मानें ? हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं, पानी की बूंद हाथ मे लेते है तो उसमे कुछ भी नही दिखता है। जो मानते है वह रूढिवादी है। किन्तु उस समय श्रद्धालु व्यक्ति, जो शरीर को निर्णायक नही मानने वाला है, शरीर से भिन्न आत्म तत्व को स्वीकार करने वाला, यही कहेगा नही, वीतराग देव ने जो कहा है, वह भले ही हमारी समझ मे न आये भले ही आंख मे दृष्टिगत नही होता हो, किन्तु वह सत्य है, तथ्ययुक्त है। ये दोनो कल्पनाएं पूर्व में चला करती थी किन्तु आज वैज्ञानिको ने ऐसे यत्र तैयार कर लिए है, जिनसे एक बूंद पानी मे चलते फिरते अनेक जीव दिखाई देते है। जो व्यक्ति कच्चा पानी पीते है, बिना छना पानी पीते है, न मालूम कितने जीवो को हजम कर जाते होगे, इसीलिए कहा जाता है कि बिना छना पानी नही पीना चाहिए। जो अज्ञानी है, जो नही समझते हैं, जो जीवन को सुसंस्कारित करना नही चाहते है, जिनका जीवन निर्णय करने मे असमर्थ है - ऐसे व्यक्ति भले ही बिना छना पानी पीते हो लेकिन जिनके मन मे यह है कि हम निर्णायक है, हम समझते है, वे तो समझकर बिना छाना पानी नही पीते होंगे। तो मैं बता रहा था कि कुछ दृष्टि से परे भी तत्त्व है, जिनमें से कुछ को वैज्ञानिक साधनो से देखा जा सकता है, चींटियाँ जब चलती हैं तो उनको पहले सुगन्ध आती है, वे उसके सहारे चल कर किसी चीज को खाने की कोशिश करती है। चींटी यह सोचती है, जितना खाना मिल रहा है जितनी सुगन्ध आ रही है, उतनी ही दुनिया है, उससे अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह चींटियों का ज्ञान जो इस तरह सीमित है, वह सत्य दृष्टि में नहीं [illegible] पाती है। दयालु उन्हें परे हटा देता है

की कोशिश कर लें तो जीवन के शिखर तक पहुच सकते हैं,जीवन के प्रश्न को हल कर सकते हैं। जीवन क्या है ? इस स्थिति को जिसने समझा है वह व्यक्ति ठीक तरह से चल पड़ा है। जिसने नही समझा है वह भौतिकवाद पर चला, जीवन के झझावात मे फँसा और विषय और कषाय को आग ने उसे जलाने की कोशिश की। कल मैं एक रूपक रख रहा था। उसमे प्रसग चल रहा था कि इधर सासू, ससुर और पतिदेव इन तीनो की निर्णय शक्ति गायब है, सबकी निर्णायक शक्ति योग्यता की दृष्टि से विद्यमान है, लेकिन मन कुसस्कारित है। हीन दृष्टि से उन्होंने सोच लिया, एक व्यक्ति ने अर्थात् सासु ने जो कह दिया, वही ठीक है। वही गोविन्द करे। माता पिता जोर देकर कह रहे थे, गोविन्द, तुम्हे हमारी बात माननी पड़ेगी। तुम इस प्रकार हमारे से अलग नहीं रह सकते। तुम सोचते हो, यह कन्या तुम्हें बहुत प्रेम करती है, तुम्हारे प्रति स्नेह दिखाती है लेकिन यह इसका कपटयुक्त चलन है। इसके जीवन पर तुम्हे विश्वास नही करना चाहिए। तुम बिना स्त्री के रह जाओ तो भी कोई बात नही। तुम्हे और कन्या मिल जायेगी, तुम फिक्र मत करो। हमारी बात को समझ कर निर्णय शीघ्र करो। आखिर वह तरुण विनयशीलता के साथ दबा हुआ माता पिता के समक्ष बोल नही सकता, उसने दबे स्वर से कहा, पिता श्री, आप और मातु श्री जो बोल रहे हैं। मैं इसको तथ्य-युक्त समझ लूँ लेकिन तथ्ययुक्त समझने के पश्चात् मुझे क्या करना है। आगे ना समझा दीजिये। तो माता बोल उठी, पुत्र क्या करना है ? इसकी समाप्त करना है। माता मनुष्य की हत्या, और वह भी पत्नी की हत्या, उसको समाप्त करने का यह सकल्प अटपटा सा लग रहा है। अगर यह अनिष्ट है, और आपकी दृष्टि मे ठीक नही है तो इसका क्यों नही उसके पिता के यहा भेज दिया जाय। पुत्र का उत्तर सुनकर माता कहने लगी, पुत्र तू नही समझता है। यह षड्-यन्त्र क्यों है यह अभी अपने परिवार वालो को मालूम नही हुआ है,

पुस्तक :—
पावन-प्रवचन—(प्रथम पुष्प)

प्रकाशक :
प्रवचन प्रकाशन समिति
सार भवन, चौड़ा रास्ता,
जयपुर—३

मूल्य : साधारण : १.५०
सजिल्द प्लास्टिक कवर : २.५०

मुद्रक
[illegible]
[illegible]
[illegible]

कहेंगे, महाराज, कहानी बहुत होती है । कहानी का जिक्र मैं कर रहा हू, वह मैं इसलिए कर रहा हू, जीवन अधकार मे पडा हुआ है, आप कहेगे अधकार क्या है ? अधकार ऐसी वृत्तिया हैं, इस प्रकार की मानसिक भावना है जिनके कारण मानव जीवन को नही समझ पा रहा है, ठीक तरह से निर्णय नही कर पा रहा हैं। ऐसी अवस्था मे मैं धर्म समझाऊँगा तो किसको समझाऊँ। जो अज्ञानी हैं जिनका अज्ञान का पर्दा नही हटा है वे जीवन को क्या समझेंगें।

और जो कुछ होगा धर्म पर आयेगा और धर्म पर आयेगा तो वास्तविक दृष्टि के रूप मे होगा। फिर भी मैं धर्म की परिभाषा को सरल करने की कोशिश कर रहा हू। वह निर्णायक शक्ति आपके मस्तिष्क मे तभी आयेगी जब आप अज्ञान से रहित होगे। जब आप समझ जायेंगे कि अब ब्लेक मनी कमाने की आवश्यकता नही है, काला बाजारी करने की आवश्यकता नही है, आदि पर शान्ति के क्षणो मे जब इस प्रकार की भावना बनेगी तब कार्य बन सकेगा। इस भावना से ही सन्त भी कहते है पर उसका असर सुनने तक ही रहता है उसके बाद वही दौड़ धूप उसी ढंग से चल पडती है। और उसी वातावरण मे रहते हैं। आप यह कहे कि ऐसी बातें नही कहू तो फिर कौनसी बाते कहू। ऊची ऊची बाते कहूं तो आप सुनेंगे नही। क्योकि वे बातें आपके दिमाग मे बैठती नही है कारण स्पष्ट है कि दिमाग मे अन्यान्य बातें भरी रहती हैं। आप यह जानते हैं जिस मकान मे बैठना है उसमे पहले झाडू देते हैं। उस मकान को साफ करते हैं। फिर उसमे बैठते हैं उसी तरह आप अपने दिमाग को भी झाडू देकर बैठें। आपको इस बात पर कुछ चिन्तन करना है। आज का मानव अपने आप मे दरिद्री बना हुआ है। कैसे निम्नस्तर की भावनायें उसके दिमाग मे घर कर रही हैं, जो किसी तरह कन्याओ को जलाकर स्त्रियो को मारकर पैसा कमाने के लिए नये-नये विवाह करें—क्या आप उनको मनुष्य कहेगे। न जाने आप तो

इसके जीवन को समाप्त करने को तैयार हो रहा हू। वह अपने आप मे सोचता है हाय गोविन्द क्या तू मानव है ? या दानव है—वह अपने आपको कोस रहा है, लेकिन उसके दिमाग का पर्दा नही हट रहा है। ऊपर से मुस्कराहट की वात करता रहता है। वह अपनी प्रिया से कहता है कि प्रिये, वहाँ पानी से भरा हुआ एक कुआ है, वहा चले। वह अपने पैर लडखडाता हुआ पत्नी को लेकर उस कुए की पाल पर पहुचता है। पाल पर पहुच कर वह अपनी पत्नी की ओर देखता है और मन मे विचार करता है हाय आज तू हत्यारा बनकर अपनी पत्नी को कुए मे धक्का देकर उसका प्राणघात करेगा। पत्नी कहती है यह कितना भयावह दृश्य है, कितना वियावान जगल है किन्तु आप मेरे साथ है इसलिये मुझे किसी वात का भय नही है, वाकी एकाकी आ जायँ तो हार्ट फेल हो जाय लेकिन मुझे निश्चिन्तता है क्योकि मैं पतिदेव के चरणो मे हू। भयानक से भयानक जगल भी हो तो मेरा कल्याण है। इन वातो को सुनकर उसका दिल दहल गया और सोचता है कि जिस पत्नी के साथ मैं इतने दिन तक रहा, कभी दुर्लक्षण नही देखा। कदाचित कुछ होता तो कुछ सकेत मिलते। कुछ समझ मे नही आ रहा है। यह तो मेरे प्रति इतना विश्वास लेकर चल रही है, मुझे परमेश्वर के तुल्य समझ कर चल रही है, फिर यह सारा प्रसग कैसे वन रहा है, इस प्रकार के कुछ शब्द सहसा उसके मुँह से निकल पडे तो वह कहने लगी प्राण नाथ, यह विश्वास आज का नही है बहुत पहले का है जबकि मैं अपने घर पर पिता के पास रहती थी उस वक्त मुझे माता का सस्कार तो पूरा नहीं मिल पाया लेकिन पिता श्री मुझे सत्सग मे ले जाते थे और कभी कभी सन्तो मे प्रश्न किया करते थे। प्रश्नो के साथ-साथ कभी यह प्रश्न भी रख देते थे कि महात्मन् ? बतायें पुरुष तो अनेक तरह की धर्म क्रियायें करके अपने जीवन

स्वरूप को समझ सकती है। ये सब बातें मैंने सत्सग मे सुनी, जो आज कुछ मेरे जीवन मे आ गई है। बचपन के अन्दर बच्चो मे जो सस्कार बन जाते है वे दीर्घकाल तक रहते है। आज तक मेरे मन मे भी वे सस्कार पड़े हुए है। इसलिए बार-बार कहा जाता है कि बाल बच्चो को प्रारम्भ से ही धार्मिक शिक्षण देना चाहिए, जितना आध्यात्मिक जीवन का शिक्षण दिया जाए उतना ही उनका जीवन आगे जाकर सुन्दर बन सकता है। वह शिक्षण आज कितनी मात्रा मे हो रहा है? मा-बाप कितना अपने बच्चो को सम्भाल रहे है? आज कितना धार्मिक शिक्षण दिया जा रहा है। यह तो एक-एक व्यक्ति से हिसाब लिया जाय तो पता लगे। इन्सान की निर्णायक शक्ति जिस रूप मे और जिस रफ्तार से चल रही है वह बेढगी है। मैं इस विषय पर ज्यादा नही कह रहा हू सिर्फ यह कहना चाहता हू कि धार्मिक सस्कारो मे उस बहिन का जीवन कितना ऊपर आया। अब गोविन्द अपनी प्रिया से पूछता है जब तुम बचपन से ही ऐसे सस्कार को लेकर चल रही हो, और पतिव्रत निष्ठा को लेकर चल रही हो तो मेरे सामने तुम सच-सच बातें करोगी या कुछ छिपाकर रखोगी। पतिदेव आप क्या सोच रहे हैं मैंने जिन्दगी मे कभी आपसे कोई रहस्य नही छिपाया। जब मैंने आपको अपना सर्वस्व ही अर्पण कर दिया तो फिर छिपाकर रखने की ऐसी कौनसी बात आ गई। आप जो कुछ पूछना चाहते हैं, पूछिए। मैं खुले दिल से उत्तर देने को तैयार हू। गोविन्द सोचता है कम से कम इसको खत्म करने से पहले मै निर्णय कर लू कि वस्तुत बात क्या है? उसने प्रश्न किया प्रिये, आज प्रात काल अपनी हवेली मे साधु आया था। पत्नी ने जवाब दिया हा प्राणनाथ आया था। तो तुमने क्या किया। पत्नी कहती है मैंने उसको भिक्षा बहराई। गोविन्द पुन· पूछता है और क्या-क्या, किया? क्या-क्या बोले? तो पत्नी ने कहा बोला क्या।

मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई ।

—उत्तराध्ययन २३।५८

यह साहसिक भीम मन, दुष्ट अश्व के समान सदा दौडता रहता है ।

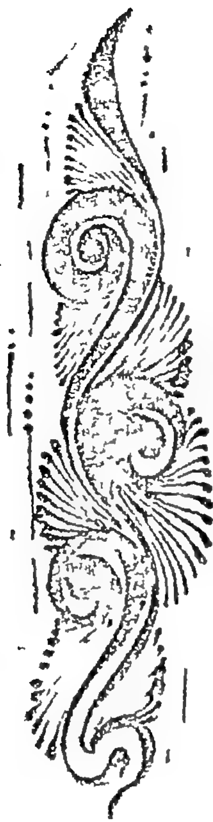
---

८ | मन का मनका

चेतन जान कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसर रे ।
शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभू गुण मन चचल थिर कर रे ।।
श्रेयास जिनन्द सुमर रे ।।।
सास उसास विलास भजन को, दृढ़ विश्वास पकर रे ।
अजपाभ्यास प्रकाश हिये बिच सो सुमरन जिनवर रे ।।
श्रेयास जिनन्द सुमर थे ।।।

यह प्रभु श्रेयास देव की प्रार्थना है । प्रार्थना की इन कडियो मे चेतन को सम्बोधन किया है, चेतना एक आत्मिक शक्ति है, इस शक्ति से मनुष्य को समग्र जीवन का और समग्र ससार का ज्ञान होता है । चेतना शक्ति के बल से ही हित और अहित को पहिचाना जा सकता है । चेतना शक्ति के दृढ सकल्प से ही इन्सान अपने कार्य में सफल होता है । ऐसी चेतना शक्ति को सबोधित करके कवि ने सकेत दिया है कि—

इन्द्रिय तक भी मन के माध्यम से ही पहुँचा जाता है और बाहर के पदार्थों का भी मन से ही चिन्तन किया जाता है। इसलिये इस चचल मन को एक स्थान पर केन्द्रित कर दो। जो श्रेष्ठतम स्थान है जिस स्थान को छोडकर अन्य श्रेष्ठ स्थान नही है। यदि उस श्रेष्ठ स्थान के चिन्तन मे मन को लगा दिया तो वह इधर-उधर नही भटकेगा। किन्तु यदि किसी अभद्र या अधूरे स्वरूप मे मन को केन्द्रित करने का प्रयास किया गया तो वह रुक नही सकेगा। उसकी स्वाभाविक चचलता वढेगी और एकाग्रता उससे परे होगी। आप देखते हैं कि जव वच्चे के सामने एक खिलौना रखा जाता है, तो वह उस खिलौने को देखने की कोशिश करता है लेकिन जव उसकी दृष्टि आगे की ओर गिरती है तो उसके मन मे जिज्ञासा पैदा होती है और वच्चा अपने सरक्षक से पूछता है कि यह क्या है ? जव उसको दूसरी चीज वतायी जाती है तो फिर वह आगे का प्रश्न करता है। वच्चे का यह स्वभाव है कि वह जानकारी के लिये तन्मय हो जाता है और आगे का प्रश्न करता है। कव तक करता रहता है जव तक कि वह अपनी समझ के अनुसार संतुष्टि नही कर लेता है। वच्चा तो शरीर की दृष्टि से ऐसा ही है लेकिन एक दृष्टि से देखा जाये तो यह मन भी वच्चे के तुल्य है। वच्चे को समझाना सहज है। वच्चे की गति को रोकना सरल है। वच्चे को तुष्टि देना मनुष्य के वूते की वात है लेकिन मन को रोकना यह मनुष्य की शक्ति से थोडा परे जा रहा है। मन की गति को कन्ट्रोल करना और तुष्टि देना यह प्रत्येक मनुष्य के वूते की वात नही है। इस मन को अगर स्थिर करना है तो आप छोटे-छोटे जितने लक्ष्य हैं, जो चंचल पदार्थ हैं जो नाशवान हैं, उन पदार्थों से उसको हटाकर अविनाशी, अटल और स्थायी तत्वों पर केन्द्रित करिये जिससे स्थिर तत्व या स्थायी स्वरूप पर केन्द्रित होने के कारण उसमे भी स्थिरता आए। वह स्थायी तत्व नही हिलेगा तो मन भी नहीं हिलेगा और यदि मन उसके साथ एकाकार



धर्म-धुरा-धु

प्रवचन-कला-प्र

परमादरणीय आ

श्री नानालालजी म०

पावन चरण कमलो

हार्दिक अभिनन्द

मोहनलाल बुलाखीचन्द चौरड़िया

(कपड़े के व्यापारी)

अहमदनगर (अनगाई गुड़ी)



धर्म-धुरा-धुरीण

प्रवचन-कला-प्रवीण

परमादरणीय आचार्य

श्री नानालालजी म० सा०

के

पावन चरण कमलों में

हार्दिक अभिनन्दन



सोहनलाल बुलाखीचन्द चौरड़िया

(कपड़े के व्यापारी)

अलीपुरद्वार (जलपाई गुड़ी)

ससार के पदार्थों का परीक्षण करते जायेंगे तो मैं समझाता हू कि जितने पदार्थ आपकी दृष्टि मे आ रहे हैं,वे सारे के सारे उस कपूर की टिकिया के मानिन्द ही मालूम होगे। क्या ऐसा कोई भौतिक तत्व है जो कि विखरने वाला न हो। शास्त्रीय दृष्टिकोण से चाहे कैसा भी चित्रण करे- यह खम्भ आप देख रहे हैं, यह मजबूत है, आपको दिखाई दे रहा है। शास्त्रीय दृष्टि से खम्भ मे परमाणु उड़ रहे है, प्रतिक्षण इसमे परमाणु प्रवेश कर रहे हैं और निकल रहे हैं। हमारी चमड़े की आंखे इसको समझ नही पा रही है। शास्त्रकारो का कथन है कि जो सपदा वनी है वह सम्पदा ज्यादा से ज्यादा अगर रहे तो असख्य काल तक रह सकती है, उसके वाद तो सारी की सारी विखर जाती है। अव आप सोचिये कि मन को केन्द्रित करने के लिये किस पर टिकाना है। कभी कभी हठ योग की प्रक्रिया से साधक को वताया जाता है कि मन को केन्द्रित करने के लिये त्राटिक करे। त्राटिक का मतलव यह है कि एक चिन्ह कही दिवाल पर या किसी स्थान पर लगा दिया जाता है वह वहाँ पर दृष्टि लगाकर मन को केन्द्रित करने की कोशिश करता है। मनुष्य मन से हैरान है। मन की गति से मनुष्य घवराया हुआ है और कही सहारा मिलता है तो उस तरफ भी व्यक्ति प्रयत्न करता है। धार्मिक क्षेत्र मे विचरण करने वाले महात्माओ ने भी भगवान् के चरणो मे आन्तरिक निवेदन कर दिया और उन्होने भी कह दिया कि भगवन् ? इस मन को मैं कैसे स्थिर करूँ।

कुंथु जिन मनडु किम् हिनिवाजे।
जिम जिम जतन करीने राखू, तिम तिम अलगू भाजे हो ॥ कुंथु जिन ॥
रजनि विचारे वस्ति उजाडे, गहण पाया ले जाय।
सांप खाइय ने मुखड थोथु एम ओलखिए न्याय ॥ कुंथु जिन ॥

कवि आनन्दघनजी अपनी साधना करते करते हैरान हो गये

विकट हो जाती है। उसी तरह से प्राणायाम है। प्राणायाम भी एक योगिक साधना है। प्रायः नासिका से श्वास को अन्दर ले जाना और नियमानुसार उसको वापिस वाहर लाकर छोड देना। रेचक और पूरक दो क्रियाये होती हैं। कुम्भक क्रिया की दो अवस्थायें होती हैं वे इस प्रकार हैं:- एक वाह्य कुम्भक, और दूसरी आभ्यन्तर कुम्भक। वाहरी कुम्भक प्रक्रिया वह है जिसमे श्वास को वाहर छोडकर रोकना होता है और आभ्यन्तर कुम्भक वह है जिसमे स्वास को अन्दर रखकर रोकना होता है वाहरी प्रक्रिया तो इतनी खतरनाक नही होती है किन्तु अन्दर रखने की जो प्रक्रिया होती है उसका सावन अच्छी तरह न वनपाये तो उसकी साधना तो कही रह जाती है किन्तु वातवाहक उसकी नाडियो मे वायु का प्रेसर इतना अधिक हो जाता है कि उसकी नाडिया फट सकती हैं मस्तिष्क की स्थिति डावाडोल हो जाती है। वह कभी कभी खतरे मे पड जाता है। मन की साधना के अनेक उपाय वताये जा सकते हैं। मन एक साथ कावू मे नही होता है। हो तो कैसे हो ? उस पर चिन्तन किया जाय तो अनेक उपाय सामने आ सकते हैं। लेकिन यदि चावी पकड ली जाय तो जल्दी हाथ मे लाया जा सकता है।

मन का वटन दवाइए

आपके हवा के लिये पखा चलता है। उस पखे की हवा लेते लेते अगर व्यक्ति घवरा जाय और वह स्वयम् पखे को वन्द करने मे अशक्त हो और किसी दूसरे व्यक्ति से कहता है, या नौकर मे वोलता है, भाई, इस पखे की हवा मुझे नही चाहिए। यह वहुत गति से दौड रहा है इसको वन्द कर दो। जिसको कह दिया वह व्यक्ति कोई ग्रामीण है, उसने कभी कही हवेलियो में पखा लगाते नहीं देखा और पखा चलाते भी नही देखा अत. उसको वन्द कैसे करना यह वह नही समझता है। ऐसे व्यक्ति को कहा जाय,

है कि मस्तिष्क की नाडिया टूटेगी या इन्द्रिया नष्ट हो जावेगी या कोई आघात लग जावेगा। सफलता नही मिलेगी।

आज के मानव की यही दशा है। वह इस मन रूपी पखे को ग्रामीण मनुष्य की तरह रोकने की कोशिश कर रहा है। वह इस मन रूपी पखे पर कन्ट्रोल करना चाहता है लेकिन जीवन कला रूपी इसकी चावी को नही पकड पा रहा है। वह अगर इसके बटन को दवाने की कला समझ ले तो मन रूपी पखा स्थिर हो जाता। फिर उसके सामने कितने भी चचल पदार्थ आये, कितने भी दृश्य उसके सामने आयें, उसके मन को चचल बनाने वाले ही स्वर्गीय दृश्य उपस्थित हो जाय फिर भी मन उसकी आज्ञा के विना चचल नही होगा। इस कला को प्राप्त करना है और इस चचल मन को स्थिर करना है, तो इसके लिये दो प्रकार के मार्ग हैं। एक प्रारम्भिक मार्ग और दूसरा स्थायी मार्ग। प्रारम्भिक दृष्टि से जीवन के २४ घटे हैं। उसमे से आधे घटे निकालने चाहिए उसमे मन की गति-विधि को देखने की कोशिश करे। २४ घटे का सारा का सारा समय आज किस काम मे जा रहा है? मन की गतिविधि को देखने मे, या मन को स्थिर करने के प्रयास मे या लापरवाह वनकर जीवन को चचल वनाने मे जा रहा है? अगर आप अपने जीवन की दिनचर्या को देखेंगे तो, विदित होगा कि जीवन के चौवीसों घटे पदार्थों को वटोरने के लिये व्यतीत हो रहे हैं। मन को वश करने के लिये कुछ भी समय नही दिया जा रहा है। आत्मा के साथ न्याय-करना चाहते है तो १२ घटे आत्मा को दीजिये और १२ घटे शरीर को दीजिये। यदि आप आत्मा के साथ न्याय की स्थिति मे नही है। और शरीर के साथ ज्यादा न्याय करना चाहते है तो, चौथाई समय, छः घटे इस इस विषय मे दीजिये। कदाचिद् आपके मन की कमजोरिया अधिक हो तो छ. घटे नही तो तीन घटे दीजिये, तीन भी नहीं दे सकें तो दो दीजिये और दो भी नही दे सकें तो एक तो

व्यापार में शरीर लगा रहे, मन, वचन, काया उसमे लगी रहे, हैं २४ घटे उसी मे लगी रहे, आगे के लिये आप नही देख रहे हैं और जब कभी मृत्यु का दौर दौरा आया, उस समय विवश होकर, यह सब छोडकर आप चले जायेंगे। तब आपके साथ कौन जायेगा, क्या स्थिति बनेगी इसका भी कभी आपने चिन्तन किया है ? आप अपने जीवन की समग्र शक्ति का अपव्यय कर रहे है, उसके मुनाफे की तरफ आपका ध्यान नही है। आध्यात्मिक जीवन की तरफ आपका ध्यान नही है। आप चतुर व्यापारी हैं पर इस व्यापार मे आय व्यय का हिसाब नही हे तो इस स्थिति से आपको कुछ ऊपर उठना है उसके लिए कम से कम एक घन्टा मन की साधना मे लगाना है। इससे आपका मन स्वाभाविक बन जायेगा और इन सारी प्रवृत्तियो से हटने लगेगा। एक इन्सान यदि अपने मन को स्थिर करके चलता है तो वह अपने इच्छित कार्य कर सकता है। यह इन्सान के हित मे है। यह एक अपूर्व लब्धि है। इसको इन्सान खो रहा है मैं इसके लिए टेम्प्रेरी उपाय आपको बता रहा हू। यह टेम्प्रेरी उपाय यह है कि घटे भर की साधना मे आप बैठें। यह चिन्तन करे कि यह जो मैंने २४ घटे बिताए हैं, इन चौबीस घटों के अन्दर मैंने क्या-क्या किया है। इस बीच मे कितने कार्य तो नैतिकता के हुए हैं ? और कितने अनैतिकता के हुए है ? यह देख लीजिए कि मैंने कितनी गल्तियां की हं ? और ये गल्तिया हुई हैं ? तो लाचारीवश हुई हैं या अज्ञान से हुई है। लाचारीवश हुई हैं तो उसका प्रायश्चित रख दीजिए जिससे मन पर उसका असर हो, और मन यह अनुभव करे कि ऐसी गल्ती करूंगा, तो मुझे यह दण्ड मिलेगा और इससे आपकी यह गलती छूट जायेगी और भविष्य मे ऐसा ध्यान रख कर ही कार्य किया जायेगा। आपका मन भी सोचेगा। इस प्रकार की भावना रख कर कुछ क्षण वह अपने पूर्व जीवन के २४ घण्टों का चिन्तन करे और फिर थोडा-

क्या सोचते हैं ? वर्ण माला ? वर्णमाला को नही समझें और दसवी कक्षा का पाठ आपको पढने के लिये दे दें, एम० ए० का पाठ दे दे, जब ए० वी० सी० डी० का ज्ञान नही है तो क्या आप उसको समझ लेंगे ? इसी दृष्टिकोण से स्वाध्याय का भी तरीका है। यह तरीका है कि चाहे जैसी पुस्तक हो, पर हो धर्म शास्त्र की, चाहे वह शास्त्रो का अनुभव हो, उस धर्म पुस्तक के स्वाध्याय के लिये आप उसका एक पेज ले लीजिये और उस पेज का भी एक पैराग्राफ लीजिये। प्रारभिक रूप से उस पैराग्राफ को आप पढिये और उस पैराग्राफ को पढने के वाद अपने मु ह से अपने कानो को ही वह सुना दें। दूसरा सुनने वाला हो तो ठीक है वरना अपने कान तो सुनने वाले हैं ही। कानो को सुनाकर आगे को वढ़ें। इस प्रण के साथ आप इसको पढिये कि मुझे इसको पुन सुनाना है तो आपका मन एकाग्र हो जायेगा, मन उसमे दत्तचित्त होकर एकाग्रता से उसको पढेगा। फिर दूसरे पैराग्राफ को लीजिये। उसके वाद दूसरे पृष्ठ को लीजिये और धीरे धीरे दो पृष्ठो तक वढिये। इसमे सवसे पहिला लाभ होगा कि जितने समय तक पढेगे आपका मन एकाग्र हो जायेगा। दूसरा लाभ यह होगा कि आपकी स्मरण शक्ति तीव्र हो जायेगी, कई व्यक्तियो को यह शिकायत होती है कि थोड़ी सी वात देखते ही वे भूल जाते हैं। हमारी स्मृति नहीं है क्या करें ? मैं पूछता हू आज व्याख्यान मे क्या सुना। कहते है, सुना तो था, याद नही है। उनकी स्मृति कहा गायव हो गई। मन डोलायमान हो रहा था। एकाग्रता मे स्मृति तीव्र हो जाती है और स्मृति से विषय का ज्ञान कर पायेंगे। तीसरा लाभ यह होगा कि आपकी वक्तृत्व शक्ति आयेगी। आपको वोलने की कला आयेगी। चौथा लाभ यह होगा कि पुस्तक मे क्या रहस्य है ? उसका क्या विषय है, उस विषय की वारीकी को आप पढ पायेंगे और वह आपके जीवन मे हित साधक है या नही ? इसका मनन कर पायेंगे। उस तरीके से लाभ की स्थिति चली तो आपकी

ज्ञान के विना आत्मा का स्वरूप मिट जायेगा और उसे जड तत्व समझ लिया जायेगा। यह पाटा है। यह ज्ञानवान है ? या अज्ञानवान आप इसका ध्यान करिये। यह जड़ है इसमे ज्ञान नही। इसके अन्दर किसी तरह की चिन्तन शक्ति नही है। यह कुछ भी नही कर सकता है। चाहे आप इसको चोट मारो यह उसका निर्णय नही कर सकता है। यह भी नही समझता है कि ऊपर कौन वैठा है लेकिन जो ज्ञानवान, आत्मा है वह इसका निर्णय कर पाती है क्योकि निर्णय उससे किया जाता है--इसको सस्कृत की दृष्टि से कहा है--"निर्णीयते अनेन", जिससे निर्णय किया जाये, निर्णीयते यस्मात्--जिसमें से निर्णय किया जाये और निर्णीयते यस्मिन्- जिसमे निर्णय किया जाये। ये सभी अवस्थाए आत्मा की ही है अत उसमें निर्णायक या ज्ञान शक्ति को मानना होगा, निर्णय की शक्ति ज्ञान के साथ है, ज्ञान से चिन्तन मिलेगा उससे चिन्तन का स्वरूप स्पष्ट होगा। कुछ दार्शनिक ऐसा वोल देते है कि आत्मा मे ज्ञान होता है लेकिन जव आत्मा परमात्मा रूप वनती है तव ज्ञान नष्ट हो जाता है।

यह भी एक हास्यास्पद वात है, इसमे गहरी दार्शनिक चर्चा है मैं उसे अभी नही ले रहा हू; मूल मे मैं आपको निर्णायक की वात समझा रहा था कि मूल रूप मे जो गुण जिसमे नही हैं, अर्थात् अनिना भाव सम्वन्ध मे जिसमे ज्ञान नही है, वह ज्ञान उसमे कैसे रहेगा और मोक्ष अवस्था मे सर्वथा नष्ट हो जावेगा। यह कैसी विशेषता है ? विशेपण लगाइये, यह असंस्कारित जीवन है। ऐसा व्यक्ति निर्णायक स्थिति नही समझ पाता और उसको जीवन का स्वरूप समझ नही आता और हर समय धोके की घडी में रहता है। जड तत्व को वेचने पर कुछ पैसा वटता है लेकिन मनुष्य जीवन इस स्थिति मे है कि यदि इसने निर्णायक स्थिति का पता नही लगाया और केवल मुर्दा अवस्था मे ही रह गया तो उसके शरीर की एक दमडी भी नही

रहता है लेकिन अगर एक चीज गायव हो गयी तो उसका साधु जीवन अधरा हो गया। उसने चाहे जैसा वेश लिया हो, लेकिन मैं अपनी दृष्टि से सोच रही थी, चिन्तन कर रही थी कि साधु ससार के सारे पदार्थों से विरक्त होता है। और जव भिक्षा की दृष्टि से घर मे प्रवेश करता है तो उसकी दृष्टि चचल नही होती है। गृहस्थ के घर में कौन सा सामान है, क्या वस्तुयें कहा पडी हैं, भाइयो वहिनों के पहिनने के कौन से वस्त्र हैं, निपटने का स्थान कहा है? आदि इन सव वातो की ओर साधु का विशेष ध्यान नही रहता है, उसका ध्यान किधर रहता है? उसका ध्यान इस ओर रहता है कि जव वह भिक्षा के लिये चले तो नीची निगाह रख कर चले, गृहस्थ के घर में प्रवेश करता है और जहा उसकी रसोई है वहां वह प्रवेश करता है तो यह देखता है कि सूजती रसोई है या नहीं, छोटी मोटी चीजो को उठाकर इधर उधर तो नही किया जा रहा है, कही वटन दवाकर प्रकाश करके भोजन तो नही दिया जा रहा है, हरी को छू कर तो भोजन नही दिया जा रहा ह, उस ओर साधु का ध्यान रहता है तो वह साधु वाह्य और आन्तरिक स्थिति को ठीक लेकर चलता है। मैंने सुना है आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज साहव फरमाया करते थे।

"ईर्या भाषा एपणा ओलखजो आचार,
गुणवन्त साधु ने देखने वन्द जो वारंवार।

साधु मे ईर्य्या समिति कैसी हो, भाषा क्या वोल रहा है, ऊटपटाग भाषा वोल रहा है या हितकारी भाषा वोल रहा है, गवेषणा यानी गोचरी की उसकी स्थिति कैसी है, कैसी गवेषणा कर है इससे उसके वाह्य और आन्तरिक जीवन की पहिचान हो सकती है। आचार्य श्रीजी महाराज साहव ने फरमाया था। उमी को शास्त्रीय प्रमाण से मैं आपके सामने रख रहा हूँ कि साधु जीवन की आन्तरिक और वाह्य स्थिति सुरक्षित रहती है तो उसका जीवन

गुण होते हैं। सत्वोगुण, रजोगुण और तमोगुण।' सत्व और रजोगुण उसमे से चला गया। जो गृहस्थ अवस्था में रहते हुए भी इतना ख्याल रहता है कि साधु ऊट पटाग बातो मे न लगे और वैराग्य भावना लेकर चले और अन्तर और बाह्य में ठीक रहे। साधु की भी मगलमय कामना नही करता वह रजोगुण और तमोगुण मे रहता है। उसने सकेत किया रजोगुण और तमोगुण दोनो चले गये इसलिये दो चले गये। मैंने उत्तर दिया कि तुम्हारे तीनो जाय। गोविन्द कहने लगा कि इसका मतलब क्या है कि तुम्हारे तीनो जाय। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीनो मनुष्य मे रहते है। रजोगुण रहता है, राजसी प्रवृत्ति रहती है और राजनैतिक दृष्टि से भाग लेता है और मन को उस ओर दौडाता है और रजोगुण मे प्रवृत्त रहता है तो दुर्व्यसन उसमे लगे रहते हैं। सतोगुण रहता है तो धार्मिक जीवन बिताता है और समता के साथ रहता है। इसान को तीनो गुणो से भी परे होना चाहिये। जैसा कि गीता मे कहा है

त्रिगुणातीतो भवार्जुन ?

तीनो गुणो को नष्ट करके सनातन भाव मे चले जाओ।

असत्य को झुकना पड़ा

तीनो सांकेतिक शब्दो का अर्थ जब गोविन्द ने सुना तो उसका दिल दहल गया। वह सोचने लगा कि बडे बडे महात्माओ के पास भी इस प्रकार की गूढ़ बातें नही मिलती। अपनी धर्म पत्नी को क्या उपमा दूँ, किस प्रकार इसका सत्कार करूँ। बिना निर्णय के कोई कार्य होता है तो गलत होता है। माता पिता की आज्ञा से मैं यहा इसको लेकर आया और अगर इसको कुए मे धक्का दे देता तो मैं इस बहुमूल्य रत्न को खो देता। मेरी क्या स्थिति होती ? इस प्रकार उसके मन मे ग्लानि होने लगी और उसका चेहरा मलीन होने लगा। पत्नी कहती है प्राणनाथ! "मैंने आपको सही बात सुनायी और

पिता देख रहे थे कि उनका पुत्र अपनी स्त्री के साथ वापिस आ रहा है। उनकी दूर से ही दृष्टि पडी कि पुत्रवधू को साथ लेकर वह आ रहा है। दोनो ने माता के पैर छूए। नमस्कार किया तो माता ने भी मुँह मोडकर आशीर्वाद नही दिया। पिता ने भी मुँह फेर लिया। गोविन्द ने कहा, पिताजी आप क्यो नाराज हो रहे है ? क्या करू मैंने आपकी आज्ञा का पालन नही किया है । आप मेरी वात को सुनिये। पहले किसी भी वात का तथ्य निकालिये, फिर उस पर निर्णय कीजिये। सहसा विदधीत न क्रिया। जल्दी मे कोई कार्य नही किया जाना चाहिये । मैं इसको कुए मे गिराने के लिये तैयार था और आपकी यह पुत्रवधू भी इसके लिये तैयार थी और इसने कोई विरोध भी नही किया। किन्तु मैं यह निवेदन करना चाहता हू कि आपने जो यह निर्णय किया है यह क्यो किया ? ये जो तीन वातें थी इन तीन वातो का अर्थ समझे विना, उस पर विचार किये विना आपने आज्ञा दे दी और मैं भी उसके लिये तत्पर हो गया। वहा पर मैंने इससे उसका अर्थ पूछा। इस प्रकार गोविन्द ने उन सारी वातो को माता-पिता के सामने रखा और उसको सुनकर माता पिता अत्यन्त ही दुखी हुए । उनकी आंखो मे आंसू भर आये और अपनी पुत्रवधू के चरणो पर गिर कर कहने लगे हे देवी, तुम्हारा जीवन धन्य है। छोटी अवस्था के अन्दर भी तुमने सत्यनिष्ठा का परिचय दिया है, धर्म भावना का परिचय दिया है, वह हम नही भूल सकते हैं। यह सारा घर, यह सारी सम्पदा अव तुम्हारे चरणो मे है। इस प्रकार एक शान्ति का वातावरण, प्रेम का साम्राज्य, धार्मिक भावना का साम्राज्य उस परिवार मे आया और वह परिवार एक आदर्श परिवार वन गया । ऐसी भावना आप अपने परिवार के अन्दर रखने को तैयार हैं तो आप आज आत्मा के स्वरुप को समझने

अलमप्पणो होंति अलं परेसिं

—सूत्रकृतांग १२।१६

ज्ञानी आत्मा ही स्व और पर के कल्याण मे समर्थ होता है।

---

१ | परम-आश्रय

प्रणमु वासुमपूज्य जिननायक सदा सहायक तू मेरो,
विषम वाट घाट भयथानक परमाश्रय शरणो तेरो ॥

यह प्रभु वासपूज्य भगवान की प्रार्थना है। नामो की स्थितियो के साथ कविता की स्थिति भी परिवर्तित हो रही है और भावो का सकलन भी विभिन्न प्रकारो मे आ रहा है। वासपूज्य भगवान के चरणो मे जो कुछ भी प्रार्थना का प्रसग आया है, इस प्रार्थना मे कल की प्रार्थना से आज कुछ अन्तर है। कल की प्रार्थना मे चेतन को सम्बोधन करके सावधानी दिलाई थी कि तू अपने वर्तमान जीवन को कल्याण के मार्ग पर लगा दे, जब कि आज की प्रार्थना मे वासपूज्य भगवान को सहायक के रूप मे पुकारा जा रहा है, और वह भी सहायता कहाँ ? तो उसका सकेत दिया है, "विषम वाट-घाट" विषम-भयकर रास्ता है, पहाड आदि भयंकर जगली स्थान है।

का सिपाही किंवा पुलिस दु खनिवारण की दृष्टि से मनुष्य के लिए सहायक वनती है या ऐसी कोई आततार्ई की स्थिति वन जाती है तो उसमें उसका सहारा लिया जाता है, उस तरह का सहारा तो भगवान से मिलने वाला नही है। लेकिन भगवान का सहारा भगवान के मार्ग मे जो हमें मिलता है उस सहारे से ही यह आत्मा अपने गन्तव्य स्थान पर निर्विघ्नता के साथ पहुच जाती है। इस दृष्टि से भगवान को सहायक के रूप मे माना जाय, भगवान चाहे पहुचे या न पहुचे लेकिन भगवान का मार्ग सर्वत्र विद्यमान है। जहा कही भी आप अवलोकन करना चाहे। उस मार्ग को ध्यान मे रखकर उस मार्ग के सहारे यदि चलें तो वह भगवान का ही सहारा है। यदि हम उनके वताये हुए मार्ग के सहारे चल रहे है तो भगवान के सहारे ही चल रहे है, और यदि मार्ग से भटककर अर्थात वताये हुए उस रास्ते से हटकर एकान्त गुफा मे भी जाकर वैठ जाते हैं और यदि वहा पर रट लगाते हैं कि भगवान आप मेरे सहायक वनो, मैं आपका जप कर रहा हू आपकी पूजा कर रहा हू आपके लिए तप कर रहा हूँ अतः आप महरवानी करके इस गुफा के अन्दर मेरी सहायता करो। इस भावना से यदि वह वैठा रहे और एक जिन्दगी नही अनेक जिन्दगियां विता दें, लेकिन फिर भी भगवान की सहायता नही मिल सकती, क्योंकि भगवान की सहायता अविधि से नही मिलती है, विधि से मिलती है। भगवान का मार्ग ऐसा है जो कि राजमार्ग है। उस राजमार्ग पर जो भी पहुच जाता है उसको वहा पर भगवान की सहायता स्वत प्राप्त हो जाती है। एक मनुष्य कमरे मे प्रवेश करे और उस कमरे के दरवाजे को वन्द करके अन्दर से कूठा (संकल) लगा दे और अपनी आखो पर पट्टी वान्ध ले, फिर वहा वैठकर सूर्य से प्रार्थना करे कि सूर्यनारायण तू आ और मुझे प्रकाश दे, मैं अन्धकार में वैठा हुआ हू। तू आ। मेरे नेत्रो को खोल

रहता है कि जो भगवान के उक्त मार्ग पर चलने वाला मनुष्य है वह कभी भी मॉगणी नही करता है और शास्त्रीय दृष्टि से भी हम सुनते हैं "नो इह लोगट्ठयाए,तव महिट्ठिज्जा" इस लोक की कामना के लिए हम तप न करें। "नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा।" परलोक की कामना के लिए तप मत करो, आदि तो इन शास्त्रीय बातो मे इस लोक सम्बन्धी सारी परिस्थितियाँ आ गई। चोर डकैत यह सब के सब इस लोक मे भय उत्पन्न करते हैं और इन्हीं उपद्रवो से बचने के लिए वासुपूज्य भगवान की प्रार्थना कवि ने की है। इसमे तो कामना कर ली गई और इस कामना के साथ चलेगे तो (निदान) तो नही हो जायगा? यदि निदान की (स्थिति आ गई तो भगवान का मार्ग कहा रहेगा। इस प्रश्न मे भी तथ्य अवश्य है लेकिन तथ्य की स्थिति को आप यदि ठीक तरह समझे तो उसका भी समाधान हो जाता है। कामना की दृष्टि से अगर वह भगवान को याद कर रहा है और निदान की स्थिति मे सोच रहा है तो वह गलत राह पर है, वह भगवान के मार्ग पर नही है, लेकिन एक शुद्ध सम्यक् दृष्टि के नाते अपने जीवन के क्षेत्र को लेकर चल रहा है, और उसको यह ख्याल है कि मुझे प्रभु के अतिरिक्त और किसी को याद नही करना है। इस प्रकार हर क्षेत्र मे प्रभु को ही याद करे और इसमे भिन्न तत्वो की तरफ उसका किंचित भी ध्यान न रहे इस भावना को रखकर कि वह इसमे इस लोक की मागणी नही कर रहा है तो उसका दृढ विश्वास उसको आगे बढाता जाता है, लेकिन ऐसी स्थिति सब मनुष्यों की नहीं बनती है। सब मनुष्य एक तरह के नही होते हैं, सब का मनोबल प्रबल नही बनता है और जिनका मन निर्बल है वे व्यक्ति यदि कदाचित् ऐसे प्रसंग मे सहायता भी चाहें तो भगवान की सहायता की ही कामना व्यक्त करें, लेकिन उसके अतिरिक्त किसी की सहायता की बात व्यक्त न करे।

"सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु"

लोगस्स के इस पद मे सिद्धो से प्रार्थना की है कि हेसिद्धदेव ? हमको सिद्धि दो या दिखाओ। लोगस्स का पाठ कौन उच्चारण नही करता है। इसको प्राय' सभी ने अपने प्रतिक्रमण की दृष्टि से सबसे पहले याद किया है। तो वहा पर सिद्धो से मागणी (याचना) की गई है कि सिद्ध भगवान मुझे भी सिद्धि दें। वास्तव मे भगवान सिद्धि देते नही है लेकिन सिद्धि की भावना जब वह अपने अन्दर जागृत करता है और उसका दृष्टिकोण मागनी का होता है तो इसका तात्पर्य यह लेना चाहिए कि तुम्हारे अन्दर मे जो सिद्धि की योग्यता है अर्थात् तुम्हारी आत्मा योग्यता की दृष्टि से सिद्ध तुल्य है। उस सिद्ध तुल्य आत्मा से ही प्रार्थना की गई कि मुझे सिद्धि दे, अर्थात् मेरे अन्दर मे रहने वाले भाव जो सिद्ध पर्याय है, उस सिद्ध पर्याय आत्मा से प्रार्थना की गई कि तुम मुझे यह जीवन दे दो। आप कभी कहेगे कि, क्या यह बात कही सम्भावित हो सकती है। अपने आपको सिद्ध मान कर उससे सिद्धि की याचना की जाय क्या यह सम्भव है ? इसके लिए कहा गया है कि किसी नय की दृष्टि से सिद्ध तो पूर्ण सिद्ध पर्याय हैं लेकिन योग्यता की दृष्टि से भव्य आत्मा भी सिद्ध रूप मे रही हुई है। इसीलिए कहा है कि सिद्धा जैसा जीव है, जीव सोही सिद्ध होय। कर्म मैल को आतरो, बूझे विरला कोय। आप यह उच्चारण करते हैं। इसमे किस बात का सकेत है ? सकेत यह है कि आप भी सिद्ध जैसे हैं लेकिन आप कर्म बन्धनो से बंधे हैं इसीलिए आपअन्य की पुकार कर रहे है। लेकिन यह नय दृष्टि ही सब कुछ नही है, क्योकि यदि एकान्त दृष्टिकोण आगया तो भगवान के मार्ग से हम भटक जाएंगे। और यदि सापेक्षता को मद्देनजर रख कर इसको समझने का प्रयास करें तो यह सिद्धि जो अपने मे रही है उसे सिद्धि के रूप मे प्रगट कर सकते हैं। शास्त्रीय दृष्टिकोण की इस उच्चतम स्थिति को समझने से पूर्व हम वर्तमान

जीवनम् । इसमें सम्यक् निर्णायकम् शब्द पर थोड़ा गहरा सोचना है क्योंकि निर्णायक स्थिति यदि हमारे सामने स्पष्ट होती है तो हमें जीवन का वास्तविक प्रकाश उपलब्ध हो सकता है जिसकी हम प्रार्थना के माध्यम से याचना कर रहे थे । आज सम्यक् निर्णायक स्थिति के अभाव मे मनुष्य इधर-उधर भटक रहा है। और खास कर आत्मा के स्वरूप के विषय मे तो वह दिग्भ्रान्त सा हो रहा है क्योंकि अलग-अलग दार्शनिक भिन्न-भिन्न रूप में आत्मस्वरूप को प्रस्तुत करते हैं । कोई-कोई साख्यादि दार्शनिको का कहना है कि आत्मा कर्त्ता धर्त्ता कुछ नही है । आत्मा परिणामी नही है, आत्मा कूटस्थ नित्य है । एक शरीर की स्थिति मे रहने वाली है। ऐसी आत्मा सम्यक् निर्णायक है, ऐसे विचार जब सामने आते हैं तो उन पर कुछ चिन्तन आगे बढता है कि यदि आत्मा कर्ता धर्ता कुछ नही है और कूटस्थ नित्य है तो फिर निर्णायक कैसे ? जो परिणामी नही होता वह निर्णायक नही हो सकता है आपके लिए ये शब्द कुछ अपरिचित से आ रहे हैं । आप कहेंगे यह परिणामी क्या है ? परिणामी का अर्थ होता है परिणमनशील । परिणमन स्वभाव है। 'परिणमन से तात्पर्य है एक अवस्था की स्थिति से दूसरी अवस्था मे मुड़ना, लेकिन दूसरी अवस्था के अन्दर मुडने पर भी अपने स्वरूप को नही छोड़ना । जैसे स्वर्ण, सोने के रूप मे है । सोना परिणामी है । क्योंकि स्वयं स्वर्णत्व के रूप मे होते हुए भी ढल सकता है, टूट सकता है, मुड़ सकता है, पिघल सकता है यानि आग के अन्दर द्रवित हो सकता है और दूसरे रूप मे ढल सकता है लेकिन ऐसी स्थिति में भी स्वर्णत्व रूप को नही छोडता । सोने की डली का आकार टूटा और लड़ी का वह आकार बना । उस डली को अग्नि का ताप लगा, बहुत ज्यादा ताप लगा और वह द्रवित हो गयी, यह डली मे परिणमन हुआ इसको कहते हैं परिणाम । द्रवित होने के बाद फिर

दूसरे शरीर मे जाने पर भी वह अपने स्वरूप को नही छोड़ देती है। एक मनुष्य की आत्मा प्रसग आने पर हाथी के शरीर मे भी जा सकती है। मनुष्य शरीर के आकार मे जो आत्म प्रदेश व्याप्त थे, वे आत्मप्रदेश हाथी के लम्बे चौड़े शरीर मे पहुच गये, लेकिन हाथी के शरीर मे पहुंचने पर भी जो आत्मा का लक्षण है जो आत्म प्रदेश मनुष्य की आत्मा के अन्दर थे, मनुष्य के पर्याय मे थे वे वही हैं, उनमे कोई अन्तर नही आया तो परिणामी होते हुए भी आत्मा अपने स्वरूप के अन्दर दृढ है, अटल है। इसी को सत् तत्व की सज्ञा दी गई है। इसलिए शास्त्रकारो ने "उत्पात् व्यय ध्रोव्ययुक्त सत्", यानी जिसके अन्दर उत्पात् अर्थात् उत्पन्न होना व्यय होना और ध्रुव या अटल रहना ये तीनो अवस्थायें हो वह सत् है, और जिसमे ये तीनो अवस्थायें एक साथ नही पाई जाती हैं वह तत्व सत् नही असत् है। उस दृष्टिकोण से आत्मा को भी तत्व माना गया है और आत्मा को निर्णायक माना गया है। जब आत्मा तत्व है और निर्णायक है और सत् है तो उसमें ये तीन अवस्थायें अवश्य माननी होंगी। इन तीन अवस्थाओ को माने विना आप तत्व के निर्णय को पूरी तरह नही समझ पायेंगे। इन तीन अवस्थाओ को मानेगें तो आत्मा को परिणामी स्वीकार करेंगे, और परिणामी स्वीकार करने पर ही आप सोच पायेंगे कि उसमे निर्णय करने का भी एक परिणाम है। कभी ऐसा भी विचार सामने आता है कि आत्मा तो कूटस्थ नित्य है यह परिणामी स्वभाव आत्मा का नही, प्रकृति का है, और प्रकृति सत्व रजस और तमो तीन स्वभावात्मक है। जब तक इन तीनो की साम्यता रहती है तब तक सृष्टि का कोई कार्य नही होता है, लेकिन तीनों अवस्थाओ में जब विकृति-विषमता आती है तो उसमे महद् तत्व पैदा होता है। उसमे अहकार फिर तन् मात्रा आदि कुछ तत्वों की सृष्टि होकर प्रकृति सारे ससार की रचना कर लेती है और पुरुष के सामने अपना नाटक उपस्थित करती है। उसमे प्रकृति

कहते हैं यदि इस परिणामी नित्य आत्मा को निर्णायक शक्ति के रूप मे लिया जाता है तो वह इस जीवन के साथ, आगे का मोड़ कर सकती है।

आप जिस शरीर के अन्दर बैठे हुए हैं, जिस परिणामी भाव को धारण करके यह आत्मा मनुष्य पर्याय मे बैठी हुई है इस पर्याय के वास्तविक सस्कारित स्वरूप को समझाने के लिए चरित्रबल का सहारा लिया जाता है ताकि चरित नायको के चरित्र के माध्यम से तत्वो को समझ सकें। मनुष्य जीवन का पर्याय तो हर आत्मा को मिला हुआ है पर जीवन की निर्णायक शक्ति को समझे विना वह पर्याय अधूरा रह जाता है। एक तरुण के जीवन की स्थिति का एक चिन्तन मैं आपके सामने रखता हूं। एक तरुण जिसकी आत्मा आत्मिक गुणों से परिपूर्ण है और सही निर्णय कर पाने में सक्षम है। वह कविता के रूप मे इस प्रकार है—

निज गुण सुखकारी ध्याता है आत्मराम को

इस भरत क्षेत्र की दक्षिण दिशा मे विख्यात मनिर्पिगल नाम का एक देश है। उसमें विविध नगर हैं वे नगर शोभा से युक्त हैं। उसमें धनी मानी और विद्वान सभी तरह की जनता का आवास है। बस्तियां सभी तरह की वस्तुओ के व्यापार से, आदान-प्रदान से और सामाजिक व्यवस्था से वह देश सम्पन्न है। उस देश का नामकरण पोतनपुर के रूप मे है, उस देश के राजा जयशत्रु के रूप मे विख्यात थे।

यह राजकीय जमाने का प्रसग है, लेकिन राजाओ मे भी सभी ऐशोआराम मे लगे हुए थे ऐसी कल्पना नही करनी चाहिए। अधिकांश भाग विकृत हो सकता है, लेकिन उसमे कुछ शासक निर्लिप्त भी रह सकते हैं।

जो पोतनपुर के राज्य सिंहासन पर आरूढ जयशत्रु महाराज थे वे प्रजा का पालन भी पुत्रवत् करते थे। वहा उनकी दृष्टि मे

सन्तवाणी जीवन की सच्ची निधि है। सच्चा मित्र और मार्ग दर्शक है।

संजय साहित्य संगम
(साहित्य प्रकाशन का विश्वसनीय प्रतिष्ठान)
दास बिल्डिंग नं० ५
बिलोचपुरा, आगरा-२
फोन ६१२६४

श्री प्रिंटर्स
(आधुनिक मुद्रणकला का आदर्श केन्द्र)
२९/१५४ राजामण्डी, आगरा-२

भटक गया। साथी पीछे छूट गए, शिकार भी नही मिला, हैरान हो गया। लौट करके पुन. राजधानी मे पहुंचना चाहता था लेकिन जोर से प्यास लगी हुई थी। वीच मे एक किसान का खेत आ गया, वहा पर एक कुआ था। यह शिकारी के वेष मे राजा उस किसान के कुए पर पहुंचा, वहां एक वुढिया को देखता है। राजा को प्यास इतनी जोर स लग रही थी कि वह वोल नही पाया और हाथ से इशारा किया कि मुझे प्यास लग रही है, पानी पिलाओ। वुढिया समझ गई। उसने सोचा यह कोई वेचारा जगली दिखता है। यह कही शिकार खेलने के लिए गया है और हैरान होकर आया है लेकिन मेरे कुए पर आ गया, कुआ भी मेरा एक तरह का घर ही है और घर पर यदि कोई अतिथि आता है तो उसका सत्कार करना मेरा कर्त्तव्य वन जाता है। उसका सत्कार करने के लिए उस वुढिया ने एक गन्ना तोडा। साठे को खीच कर वाहर लाई वह वृद्धावस्था में भी इतनी ताकतवर थी कि उसने उस गन्ने को निचोड करके रस का लोटा भर दिया और उस राजा को रस पिलाया फिर पूछने लगी—वोलो भाई, अव भी क्या तुम्हारी प्यास अवशेष रही। तो र जा ने कहा माजी, मैंने मागा तो पानी था लेकिन तुमने रस पिला दिया तो भूख और प्यास दोनो गायव हो गई। वुढिया ने निस्वार्थ भावना से रस पिलाया और मानवीय दृष्टि से, वात्सल्य भावना से कहा कि भाई शिकारी—(वह वुढिया नही जानती थी कि यह राजा है)—तुम्हारा मैं क्या सत्कार कर सकती हू, तुम्हारा ही घर है, तुम अभी जाते हो तो जाओ लेकिन फिर कभी आना। राजा वहा से रवाना हो गया। रास्ते मे जाते जाते वह चिन्तन करता है कि मैंने जमीन का टैक्स वहुत कम लगा रखा है, ये किसान परिवार कितना कमा रहे है एक गन्ने के अन्दर ही इतना रस कि इतना सारा लोटा भर गया। कितना गुड़ और शक्कर तैयार कर रहे है। इन पर टैक्स अधिक लगाना चाहिए। राज्य मे जाकर उसने वहुत ज्यादा

इसलिए रख गया हूं राजा का असर प्रजा पर पडे विना नही रहता। जिस राज्य मे कोई उत्तम पुरुप पैदा होता है उस राज्य मे शासन की स्थित उत्तम होती है। तो जिस तरुण का और जिस राजा का वृत्तान्त आने वाला है उस राजा का जीवन कैसा था, इसका थोडा सा संकेत मात्र किया गया है कि वे कैसे थे उन्होंने परस्त्री को माता समझी। पर स्त्री उनकी दृष्टि मे कभी नही आई,अपनी जगत् साक्षी से वनी हुई उनकी स्त्री के अलावा कोई भी वहिन उपस्थित हुई तो उसको माता की निगाह से देखने की कोशिश-करते। जहा शासक के स्वय के जीवन मे इस प्रकार की चरित्र निष्ठा हो, उसके राष्ट्रीय चरित्र की प्रगति होती है। वे राज्य के शासक थे और उन पर सव तरह का उत्तरदायित्व था। वे अक्राता नही वनना चाहते लेकिन यदि कोई अक्राता वन कर आक्रमण करने की स्थिति मे आता है तो वे पहले साम, दाम और भेद की नीति से समझाने का प्रयास करते यदि इनसे भी नही मानता तो दण्ड नीति का प्रयोग करना पडे तो शत्रु को नाश करने की दृष्टि मे नही अपितु आतमरक्षा व राज्य की रक्षा के लिए और स्वयं के आश्रित रहने वाले प्राणियो की सुरक्षा के लिए कार्य करते थे। तो वैसा प्रसंग आने पर कभी शत्रु के सामने पीठ नही दिखाते, स्वयं आगे वढ कर जाते। वे पास में रहने वालों को या अपने पास के सिपाहियो और फौज को आगे वढाकर स्वय पीछे नही रहते, वल्कि स्वय सवके आगे रह कर लडाई के मैदान मे उतरते थे। यह सारा विश्लेपण उनके व्यक्तित्व का, उनके चरित्रवल का इसमें कियागया है। उनका चरित्र वल कितना उन्नत था इसकी कल्पना संक्षेप मे मनुष्य कर सकता है। लेकिन उस राज्य मे राजा कितना भी चरित्र वाला हो और वह राष्ट्रीय चरित्र का स्वामी हो लेकिन यदि उसकी धर्मपत्नी उनके अनुरूप नही हो तो वहा की स्थिति डांवाडोल हो सकती है। तो महाराजा के साथ मे रहने वाली महारानी का जिक्र भी आता है।

अज्झत्थहेउं नियरस्स बंधो

—उत्तराध्ययन १४।१६

अन्दर के विकार ही वस्तुत. बंधन के हेतु हैं। निर्विकार जीवन ही निर्मल होता है।

---

१० | निर्मल जीवन

विमल जिनेश्वर सेवियें थारी बुद्धि निर्मल हो जाय रे जीया।
विषय विकार विसार में रे जीवा तू मोहनीय कर्म खपाय रे जीया॥

वन्धुओ,

यह विमलनाथ परमात्मा की प्रार्थना है। प्रभु के नाम भी कैसे कैसे आ रहे हैं। विमल शब्द, यह शब्द हर व्यक्ति के मन मे एक विमलता की भावना उत्पन्न करने वाला है।

विगत यस्य मल स विमल।
अथवा विगतोमलो यस्मात स विमलः॥

जिसमे से मल चला गया है वह विमल बन गया। गटर के पानी में मैल मिला रहता है इसलिये वह पानी गन्दा रहता है। प्रत्येक व्यक्ति कहता है कि यह पानी गन्दा है, विमल नही है, निर्मल नही है। लेकिन जहा हौज का स्वच्छ और निर्मल पानी है उसको निर्मल कह

सोना मिट्टी मे दवा पडा है। वह सोना कव से मिट्टी में है, इसका कोई अन्दाज लगा सकता है ? अनादि काल से मिट्टी के साथ वह घुला मिला हुआ है। पर उस अनादि काल से मिट्टी के घुलने वाले को भी एक दिन मिट्टी से रहित किया जा सकता है। उसको भी निखालिस वनाया जा सकता है। वह कुन्दन वन सकता है।

इस एक देशीय उदाहरण से अनादि काल से मिट्टी के समान कर्मों के साथ आत्मा लिप्त हो रही है। पर प्रयत्न विशेष से इसको भी इस कर्म रूप मिट्टी से अलग करके निखालिस निर्मल वनाया जा सकता है। जीवन के ऐसे निर्मल प्रसग को जिन्होने उपस्थित किया वे विमलनाथ भगवान् कहे जाते हैं उन्ही के चरणो मे आज प्रार्थना का प्रसग है।

विमल जिनेश्वर सेविये
तू मोहनीय करम खपाय रे जीवा।

प्रार्थना की ये पंक्तिया सीधी सादी हैं और सम्वोधन भी वडा सुन्दर है। तू विपय विकारो को छोड़कर, विमलनाथ भगवान् की सेवा में यदि लग जाता है तो तेरे ये तमाम वन्धन टूट सकते हैं। लेकिन यह सोचने का विषय है कि विमलनाथ भगवान् के चरणों में लगेगा कौन ?

लगने वाले अपने आपको समझेंगे तव ही तो लगेंगे, जिसने अपनेआपको नहीं समझा वह कैसे विमलनाथ के चरणो मे जाएगा ?

आप सव यहां व्याख्यान के स्थल पर उपस्थित हैं। आपको मे कभी पूछ लू कि आप कौन हैं ? वतलाओ !

आत्मा हैं।

आत्मा हैं ? तो आत्मा का स्वरूप क्या है ? आज उस आत्मा के स्वरूप को ही हमे ठीक समझना है। एक आध या कुछ व्यक्ति वता सकते हैं कि आत्मा है, पर मेरा प्रश्न कुछ व्यक्तियों मे नही है,

आत्मा ज्ञानवान है और वह ज्ञान युक्त गुण भी ऊपर से चिपकाया हुआ नही है। वह आत्मा के साथ अभिन्न रूप से तदाकार रूप में रहता है। अगर ज्ञान अलग चीज है और आत्मा अलग चीज है और किसी पदार्थ से उन ज्ञान को आत्मा के साथ चिपका कर यदि कोई उसकी स्थिति को समझाता हो तो यह दृष्टिकोण भी असस्कारित मानस का है।

ज्ञान आत्मा के साथ अलग से लाकर चिपकाया नही जाता। ज्ञान तो आत्मा की शक्ति के रूप मे है। आप सूर्य को देख रहे हैं। इस सूर्य की किरणे सूर्य के साथ किस सम्बन्ध से रही हुई हैं? किरणे अलग हैं और सूर्य अलग है क्या आप यह अनुभव कर रहे है? नही। तो क्या किसी दूसरे ठिकाने से किरणो को लाकर किसी चिपकाने वाले पदार्थ के द्वारा वे सूर्य के साथ चिपका दी गई है। अथवा वे किरणें सूर्य का रूप ही है? आप इस को समझ लेंगे तो आगे की स्थिति भी स्पष्ट हो जावेगी।

सूर्य की किरणें सूर्य से अलग नही हैं। अगर अलग हो जावे तो कोई उसको सूर्य नही कहेगा। वह पिण्ड सूर्य नही कहलावेगा। सूर्य वह है जिसके अन्दर किरणें ओत-प्रोत हैं। जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से भिन्न नही और वाहर से लाकर चिपकाई भी नही जाती वैसेही ज्ञान शक्ति चैतन्य शक्ति आत्मा से भिन्न नही, आत्मा के साथ ही सूर्य की किरणो की तरह वह ओत-प्रोत है। उनको कथचित् भिन्न भी कह सकते हैं और कथचित् अभिन्न भी। यह तो स्याद्वाद् दृष्टिकोण है। पर आत्म-स्वरूप को समझने वाली सम्यग्दृष्टि आत्मा सबसे पहले आत्मा को चैतन्यमय माने और उसके साथ ही साथ दूसरा विशेषण इसका परिणामी माने। जो परिणामी है वह कर्त्ता भोक्ता की स्थिति मे आता है। जिसके अन्दर परिणाम नही है वह कर्त्ता भी नही हो सकता और न वह किसी चीज का भोक्ता हो सकता है। कर्तृत्व शक्ति और भोक्तृत्व शक्ति दोनो एक दृष्टि से आत्मा के स्वभाव गुण के अन्तर पेटे

क्रिया हो रही है। लेकिन एक व्यक्ति इधर से उठकर उधर बैठ रहा है वह क्रिया हो नही रही है बल्कि यह क्रिया की जा रही है। अपने घर से व्यक्ति चला, वह अपनी कर्तृत्व शक्ति के साथ शरीर को साथ में लेकर चला लेकिन शरीर वर्तमान की स्थिति में आत्मा से ओत-प्रोत हो रहा है। लोह पिण्ड के अन्दर जैसे आग का प्रवेश है और उस लोह पिण्ड को आग के गोले के रूप मे पुकारा जाता है वैसे ही यह आत्मा इस समय इस शरीर पिण्ड के साथ मे आग की तरह शरीर मे ओतप्रोत हो रही है। तो जैसे उस लोह पिण्ड को आग युक्त होने से लोह पिण्ड न कह कर आग का गोला कहा जाता है वैसे ही वर्तमान मे आत्मा को इस शरीर युक्त होने के कारण इस शरीर सहित आत्मा को आत्मा कहा जाता है। इस समय शरीर को हम सर्वथा जड नही कह सकते। हम उस सूत्र पर चिन्तन करें जो भगवती सूत्र मे प्रश्न के रूप मे आया है :—

"आया भन्ते काया अन्ने काया ?

भगवन् ? आत्मा काया है या काया अन्य है ? तो भगवान ने उत्तर दिया "आयावि काया अन्नेवि काया ।" आत्मा काया रूप भी है और अन्य रूप भी। इसी प्रकार आत्मा को रूपी आत्मा भी कह सकते हैं उसका भी प्रश्न वहा भगवती सूत्र मे आया है —

रूवी ए भन्ते आया अरूवी आया ?

हे भगवन आत्मा रूपी है या अरूपी ? तो उत्तर मिलता है :—

गोयमा ! रूवीवि आया अरूवी वि आया।

हे गौतम ? आत्मा रूपी भी है, और अरूपी भी है। रूपी आत्मा किस रूप में, जब तक कर्मों के साथ लिप्त है और शरीर का पिण्ड धारण करके चल रही है तब तक इसको रूपी आत्मा कहा जाता है और यह रूपी आत्मा चलती है चल कर अन्य स्थान पर पहुंचती है। आप जो आये हैं रूपी आत्मा के

निकाल लेना चाहिए। इस तरह वह निर्णय लेकर चल पड़ता है और जब चलता है तो रास्ते मे बहुत ट्रैफिक है उस ट्रैफिक के बीच मे,से होकर आता है लेकिन अपने आपको अखण्ड लेकर आता है, कही ऐक्सीडेन्ट नही होता, कही टकराव नही और लाल भवन मे प्रवेश करता हुआ सीधा नही आता, नीचे टेढी-मेढ़ी नाल है लेकिन कही दीवार से टकराता है ? नही। चाहे अँधेरा क्यो न हो लेकिन एकाएक टकराता नही। तो बन्धुओ विचार यह करना है कि इस प्रकार कार्य करने की निर्णायक ;शक्ति किस मे है ? वह जिसमे है वह आत्मा है और वह निर्णायक तत्व है। उस कर्तृत्व को हर हालत मे मानना पड़ेगा। और कोई इन्सान कहे कि आत्मा कर्ता धर्ता कुछ नही है, और यह जो कुछ होता है वह शरीर से होता है, यह बोल रही है तो यह जिह्वा बोल रही है और आत्मा तो कुछ नहीं बोलती। मैं कभी-कभी विचार करता हू कि कितने बचपने की सी बात है और कितनी असस्कारित बात है। आत्मा जब तक वैज्ञानिक शक्ति से बोलने का प्रयत्न नही करेगी तो बेचारी आत्मा रहित जिह्वा क्या समझती है कि मुझे क्या शब्द बोलने है। वह जिह्वा और मु ह क्या समझता है कि वह कुछ खुल सके। वह कुछ नही समझता। उसमे बोलने वाली, चैतन्य कर्तृत्व शक्ति वाली आत्मा है इ॰लिए आत्मा के अन्दर कर्तृत्व गुण है। शरीर के माध्यम से जो खाना खाते हैं, यद्यपि खाना शरीर के अन्दर आ रहा है लेकिन खाने की जो व्यवस्थित क्रिया है वह आत्मा की है और खाने का कर्तृत्व भी आत्मा के साथ है। कोई बिना आत्मा के कर्तृत्व के मुर्दा मे तो जहर सामने रख दो उसको वह जहर का ज्ञान कौन कराता है। यह खट्टा है, मीठा है। मुझे मीठा खाना है खट्टा नही, इस बात का विज्ञान कराने वाला कौन है ? क्या जिह्वा मे ताकत है ? चेतन्य रहित जिह्वा कुछ भी ज्ञान की शक्ति नहीं रखती, इसलिए

अन्धकार से परे हो जाता है। जो यह समझते है कि हमारा किया क्या हो सकता है, जो कुछ होता है वह तो उसके अधीन है, दूसरा ही करने वाला है, कोई दूसरा ही नचाने वाला है और हम तो कठपुतली की तरह नाचने वाले हैं, हमारा किया कुछ नही होता। कभी-कभी तो हम यहा तक पहुंच जाते है कि यह सब कुछ कराने वाला भगवान है। कितनी बडी बात कह दी। भगवान कराने वाला है तो भगवान विमल है कि मल सहित है? जो रागद्वेषरहित है वह यह सब कराता है तो ईश्वर इस आत्मा को रागद्वेष मे क्यो गिराता है। मलिन करने के लिए क्यो पाप कर्म करवाता है, क्यो नास्तिक कर्म करवाता है—ऐसे अनेक प्रश्न आकर सामने खडे हो जायेंगे, जिनका कि समाधान नही हो पायेगा। और वस्तुत जहा विचित्र ढग से सोचा जाता है वहा समाधान नहीं हो पाता है इसलिए वह ईश्वर तो सदा तटस्थ अपने स्वरूप के अन्दर तल्लीन है और वह विमल है। हमने उस विमलता का आदर्श सामने रखा, कर्तृत्व शक्ति को अपनी समझ कर अच्छा करते है तो उसका अच्छा फल भोगेंगे और पाप कर्म करेंगे तो बुरा फल भोगेंगे क्योकि आत्मा मे कर्तृत्व शक्ति है। यह सब व्यक्तियो के साथ रही हुई है इस भावना को लेकर इन्सान को अपने जीवन का चिन्तन करना चाहिए और इसके साथ ही साथ यह भी चिन्तन करना चाहिए कि हम अपनी शक्ति के अनुसार अपना तो निर्माण करते ही है लेकिन साथ ही पडोसियो का निर्माण भी कर सकते है, कुछ सामाजिक संस्थाओ का भी निर्माण करने मे निमित्त बन सकते हैं। उसमे निमित्त के रूप मे भी कर्तृत्व हमारे सामने आ सकता है। जैसे कुम्भकार, घडा बनाता है। घडा बनाने के दो मुख्य कारण हैं एक तो उपादान और एक निमित्त। उपादान का तात्पर्य यह है कि जो कार्य रूप मे परिणत हो जाये। मिट्टी का ढेला मिट्टी के ढेले के स्वरूप को

इनमे से एक की भी कमी रह जावे तो लक्ष्य प्राप्ति मे अधूरापन रह सकता है। वाधा आ सकती है।

मैं अभी इस विषय को अधिक गहराई मे नही ले जा रहा हू। कभी प्रसग आ गया तो खुलकर चर्चा करने का विचार है। यहा तो कुछ थोडी सी वस्तुओ का विवेचन करके आगे चलना चाहता हू।

सन्त जन-समुदाय के लिये निमित्त कर्ता वनकर जीवन निर्माण की स्थिति का कार्य करते है, चरित्र निर्माण की भावना उत्पन्न करते है, उपादान शक्ति को भी विकसित करने का शक्ति भर प्रयास करते है और उनके निमित्त रूप मे उपस्थित होकर कार्य कर पाते हैं। वैसे ही सन्तो के अभाव मे जो परिवार के मुखिया है उन पर परिवार के निर्माण का दायित्व है सन्तान की स्थिति को सुसन्तान के रूप मे परिणत करने मे निमित्त कारण उनके परिवार के अन्दर रहने वाले सदस्य अथवा परिवार का मुखिया वनता है। आप दृष्टान्त रूप मे समझिये कि घर के अन्दर रहने वाली माता अपनी सन्तान को सुसस्कारित वनाने मे कुम्भकार की तरह निमित्त कर्ता वन सकती है। लेकिन किसकी ?

सन्तान की।

पर सन्तान कैसी हो। उस घर मे जन्म लेने वाला पुत्र सुशील हो, चारित्र सम्पन्न हो और वह अपने जीवन को सुन्दर तरीके से निर्माण करने वाला सावित हो इस भावना से यदि माता या पिता अपनी स्थिति से कुछ कार्य करें तो सन्तान का वहुत कुछ उपकार कर सकते हैं और यदि माता-पिता लापरवाह रहे तो यह काम किसी सीमा तक नही हो पावेगा। सन्तान को जन्म दे देना एक वात है पर उसको पढा लिखाकर सुन्दर तरीके मे उसका जीवन निर्माण कर देना दूसरी वात है।

मैं आपके सामने जो एक विशिष्ट पुरुष का चरित्र रखना चाह रहा हू उस विशिष्ट पुरुष के जीवन का निमाण करने वाला कौन

कर रही है। जन-जन के मुँह से शब्द निकल रहे थे।

वह पवित्र जीवन लेकर चलने वाली महारानी। उसे स्वप्नो का अधिक प्रसग नही आता। शान्ति के साथ जीवन यापन करती है। अधिक कार्य मे भी व्यवस्थित रूप से चल रही है। एक दिन की बात है वह शय्या पर सोई हुई थी। उसने एक दिव्य स्वप्न देखा। उस स्वप्न मे देखा कि एक दिव्य सरोवर जिसमे निर्मल पानी भरा हुआ है उसमें और भी बहुत से कमल खिलकर महक रहे हैं। कमलो के अन्दर से सुन्दर पराग बिखर रहा है और चारो ओर सुगन्धि फैल रही है। तो उसने रात्रि को इस प्रकार का स्वप्न देखा। महारानी स्वप्न को देखते ही जगी और सोचने लगी कि मुझे सहसा कोई स्वप्न नही आता, लेकिन आज जो अचानक स्वप्न बना है यह किसी न किसी बात की सूचना देने वाला है और मुझे इस स्वप्न का सुन्दर तरीके से चिन्तन करना है। जिन भाई और बहिनो को बहुत स्वप्न आते हैं जिनकी कि गिनती नही रहती उनके स्वप्न सार्थक नही होते। प्राय. वे सब मानसिक कल्पनाओ के रूप मे होते हैं। उनके स्वप्नो की स्थिति सामान्य पदार्थो की बनती है।

वैसे स्वप्न की धारा मानसिक विचारो के साथ है। मन के अन्दर जो कुछ देखकर संस्कार डाले गये हैं और जिन पदार्थों को ग्रहण करना चाहते हैं उनकी पूर्ति नही हुई, और उनकी चिन्ता लेकर सो गये तो रात्रि मे उसी का स्वप्न देखने मे आ जावेगा। अथवा वह कही से कुछ सुन लेता है कुछ देख लेता है, या सूंघ लेता है कुछ चख लेता है या कुछ स्पर्श कर लेता है या अनुभव करता है तो उसका भी मिला जुला स्वप्न बन जाता है और उसी मे रातभर भ्रमण करता रहेगा और जिनका दिल इतने तुच्छ स्वार्थो मे तल्लीन होता है उनको तो दिन मे बैठे बैठे ही स्वप्न आ जाया करते हैं।

सन्त लोग कभी-कभी कुछ बोल दिया करते हैं और मैंने भी एक बात इसी तरह की सुनी है। एक श्रावक जी सामायिक मे बैठे

जो भव्य स्वप्न आया है यह मुझे आज क्या सकेत दे रहा है, कौन सी वात का फल देने वाला है ? वह चिन्तन करने लगी कि जो उत्तम स्वप्न आते हैं, वे कुछ न कुछ लाभदायक होते हैं। इस भावना से महारानी विविध कल्पना करने लगी और अनुमान लगाया कि सम्भव है कि मुझे ऐसा स्वप्न आया तो मेरी कोख मे कोई उत्तम पुरुष आ सकता है, क्योकि जव कभी उत्तम पुरुष के आने का प्रसग आता है तो ऐसा स्वप्न आता है। इस प्रकार महारानी भी स्वप्न का चिन्तन करके कुछ अनुमान लगा पाई। लेकिन यह सोचा कि जो मुझे स्वप्न आया है इसका मे स्वय ही निर्णय न करके अपने प्राणनाथ जो मेरे पतिदेव है उनके सामने भी इसका वर्णन करूँ और उनके मुखार्विन्दु से भी इस स्वप्न का अर्थ समझूँ। इसी भावना को लेकर . उसने सोचा मेरे पतिदेव की शैया पास के कमरे मे है। मै पतिदेव के चरणो में पहुचकर इस स्वप्न का सारा वृतान्त उनसे कहू। प्राचीन काल के अन्दर रहने वाले मनुष्यो की एक आचार सहिता होती थी। गृहस्थ अवस्था मे रहने वाले जो पुरुष अपने जीवन को चरित्रनिष्ठा के साथ रखना चाहते है वे विषय वासना के कीडे नही होते। उनका शयन कक्ष भी अलग-अलग होता था। पति के सोने का कमरा अलग और पत्नि के सोने का कमरा अलग। वे उस दृष्टि से दोनो विभक्त थे। जव वह वहाँ से उठी और पतिदेव के कमरे मे योग्य समय पर पहुँची जिस समय कि पति की निद्रा प्रायः समाप्त हो चुकी थी, कुछ थोडा सा आलस्य अवश्य था। जैसे ही इसके पैरो की आहट हुई तो महाराजा जाग गये। आंख खोलकर देखते हैं तो महारानी जी नजदीक खड़ी हैं, कहा, महारानी अभी इस समय आपका यहा आगमन कैसे ? नाथ ! आज मै आपके सामने कुछ प्रश्न लेकर उपस्थित हुई हू। कहा, कौन सा प्रश्न है ? झट मे उनको समीप मे सिंहासन दिया। महारानी वैठी और

सकता है। जैसे सरोवर के अन्दर कमल खिले हुए थे उसी तरह से तुम्हारे पुत्र के जीवन मे आन्तरिक कमल खिलेंगे, उससे गुणो की सुगन्धि फैलेगी। उन्होने कहा कि मैंने जितना श्रवण कर रखा है जितनी शिक्षा पाई है उतनी आपके सामने रख रहा हूँ। आपने स्वप्न देखने के बाद निद्रा ली या नही ?

नाथ ? मैंने तो कुछ भी निद्रा नही ली। उसी समय मैं धर्म चिन्तन मे बैठ गई।

"बहुत अच्छा।" उत्तम स्वप्न के बाद निद्रा नही लेनी चाहिए। नही तो, उसका फल मारा जाता है। तुमने उत्तम स्वप्न आने के बाद मन मे बुरा सकल्प तो नही किया ?

नही नाथ, इनता तो मैं जानती हू फिर खोटा सकल्प क्यो करती। मैं भी कुछ अनुमान लगा रही थी। पर अब आपके चरणो को पाकर धन्य हो गई। आपने इसका अर्थ विस्तार से बतलाया है। आपकी सभी बातो को मैं हृदयगम करती हू और विश्वास करके अपने जीवन की स्थिति को शान्त रखने का विचार करती हू।

"महारानी, तुम्हारी कुक्षी से जन्म लेने वाला कुल भूषण होगा, कुल की शोभा बढाने वाला होगा। यद्यपि पुत्र मे उपादान शक्ति तो अपनी है पर निमित्त कर्ता के रूप मे तुम बनोगी अत. तुम्हारा जीवन जितना निर्मल होगा उतनी ही गर्भस्थित तुम्हारी सन्तान निर्मलता की तरफ बढती जावेगी इसलिए तुम यह प्रयास करो कि तुम्हारा जीवन निर्मल से निर्मलतर बनता जावे और उस प्रयास के द्वारा तुम अपनी सन्तान के जीवन को भी सुसस्कारित बना सको।

इस चारित्र भाग से हमें भी कुछ सोचना है। इसीविषय की पूर्ति के लिए विमलनाथ की प्रार्थना चल रही है—

विमल जिनेश्वर सेवियें

आप इसके आधार पर अपने जीवन के कर्तव्यो को समझकर अपनी क्रियात्मक उपादान और निमित्त शक्ति को समझने का प्रयास करेंगे तो हमारा जीवन धीरे धीरे निर्मलता की तरफ बढता जावेगा। इस निर्मलता की तरफ बढते हुए आप भी विमलनाथ की तरह बन सकते हैं।

लाल भवन

२६ जुलाई ७२

